श्रीः ।

श्रीयजुर्वेदीय-

रुद्राष्टाध्यायी ।

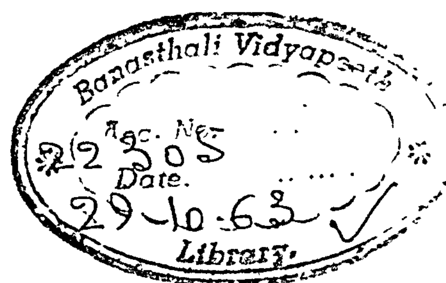
मुरादाबादनिवासियजुर्वेदभाष्यकारविद्यावारिधि-
श्रीपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत-
संस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्विता ।

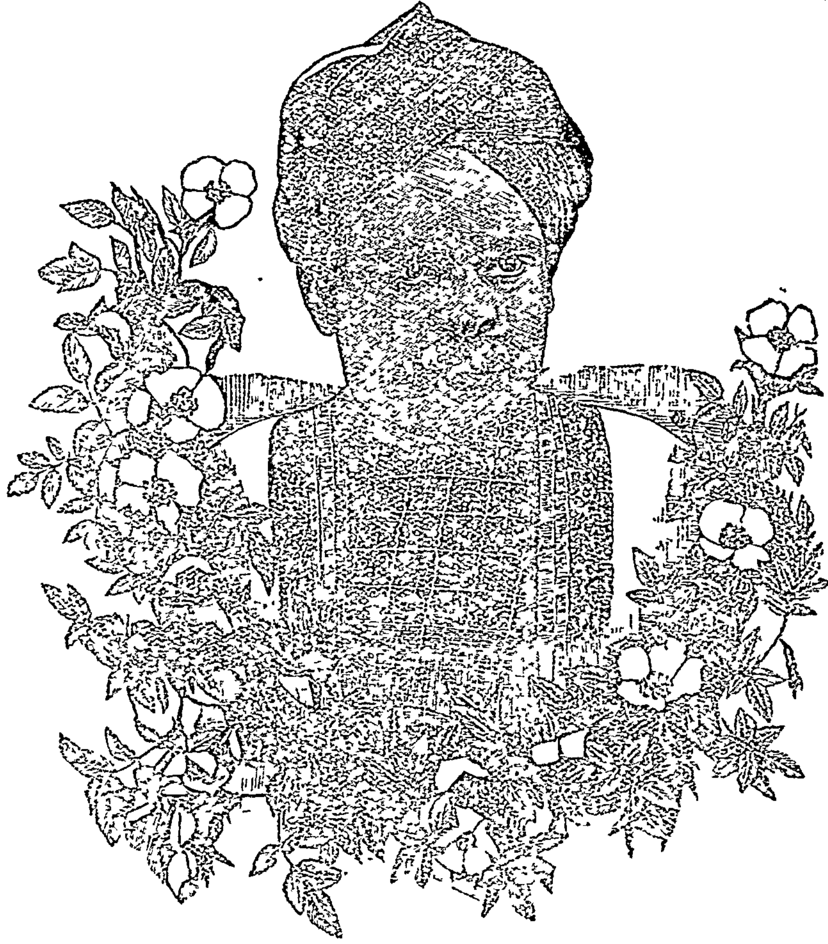
सा च

श्रीकृष्णदासात्मज–गंगाविष्णोः
अध्यक्ष "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणागारे
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयी इत्यनेन स्वाम्यर्थे
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

संवत् १९८०, शकाब्दाः १८४५.

कल्याण–मुंबई.


Banasthali Vidyapith
Acc. No.
22305
Date.
29-10-63
Library.



पं० ज्वालाप्रसादमिश्र.

भूमिका

सम्पूर्ण जगत्में वेदकी महिमा कौन नहीं जानता, वेद ही सम्पूर्ण ज्ञानका भंडार है, सर्वज्ञ परमात्माका स्वरूपही वेद है, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, मीमांसासूत्रादिमें वेदकी महाप्रशंसा पाईजाती है, पाराशरस्मृतिमें लिखाहै-"वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम" वेद साक्षात् नारायण स्वयम्भू ही है, ब्राह्मणभागमें भी वेद परमात्माका निःश्वसित कहा है-"अरे मैत्रेयि अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" इति शतपथ० । जब कि वेद, नारायणरूप नारायणप्रेरित अपौरुषेय और अनादि है और अनन्तकल्पोंके पहले भी विद्यमान था इसमें अनेक प्रमाण हैं तब यह सम्पूर्ण धार्मिक पुरुषोंकी श्रद्धाकी सामग्री है इसमें शंका ही क्या है ।

वेद अपने धर्मका मूलग्रन्थ है, प्रवृत्तिलक्षण निवृत्तिलक्षण धर्म वेदमें विद्यमान हैं प्रवृत्तिलक्षणवाला धर्म, जिन पुरुषोंको वैराग्य नहीं है उनको क्रमक्रमसे निष्कामकर्मोंका बोध कराकर उनसे मनशुद्धि करके निवृत्तिकी ओर लेजाता है, और निवृत्तिलक्षणवाला धर्म ज्ञान वैराग्यरूप होकर साक्षात् मोक्षका साधनरूप होता है, निवृत्तिलक्षणवाले धर्ममें भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यस्त इन आश्रमोंकी व्यवस्था है । ब्रह्मचर्य आश्रममें वेदविद्याके ज्ञानकी प्राप्ति, सन्ध्या, अग्निहोत्र, देवपूजा आदि वैदिककर्मोंको करतेहुए आचार्यकी सेवा करना मुख्य कर्तव्य है, इस आश्रमकी सम्पूर्णरीति पालन करनेसे इन्द्रिय और अन्तःकरण अपने वशमें होते हैं, पहले आश्रममें ही यदि जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्यकी इच्छा करे और नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर वेदाभ्यास और योगसाधन करे तो भी मोक्षमार्गमें पहुंचता है, इस आश्रमके उपरान्त ही चतुर्थ आश्रम संन्यास ग्रहण कर संसारसे निवृत्त होजाय, यदि इन्द्रियसंयम नहीं हुआहै तो शक्तिके अनुसार आचार्यको दक्षिणा देकर प्रसन्नतापूर्वक पिताके घर आकर विवाह करके गृहस्थ आश्रममें वेदमें कहे धर्मोंका अनुष्ठान करता रहे ।

गृहस्थाश्रममें पडकर जिससे मन विषयलोलुप होकर अधोगतिको प्राप्त न हो, और अपनी वृत्तियोंको स्वच्छ रखसके इसके निमित्त रुद्रका अनुष्ठान करना मुख्य और उत्कृष्ट साधन है यह रुद्रानुष्ठान ही प्रवृत्तिमार्गसे निवृत्तिमार्गको प्राप्त करानेमें समर्थ है ।

जिस प्रकार दूधमेंसे मक्खन निकाल लिया जाताहै इसी प्रकार द्विजातियोंके कल्याणके निमित्त यह रुद्राष्टाध्यायी वेदका साररूप महात्माओंने संग्रह की है,

इसमें कुछभी संदेह नहीं कि इसमें गृहस्थधर्म, राजधर्म, ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, ईश्वरस्तुति आदि अनेक सर्वोत्तम विषयोंका वर्णन है ।

वेदमंत्रोंका विनियोग, अर्थ, ऋषियोंका स्मरणादि जाननेका माहात्म्य ब्राह्मण और अनुक्रमणिकामें विशेषरूपसे वर्णन कियाहै, अर्थ और विनियोगको जानकर जो कार्य कियाजायगा वह कल्पवृक्षकी समान विशेषरूपसे फलदायक होताहै इससे अर्थका ज्ञान अवश्य होनाचाहिये । जैसे "हे रुद्र ! रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः । यद्वा-'रुगतौ' ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः रवणं रुत् ज्ञानम् भावे क्विप् तुगागमः । रुत् ज्ञानं राति ददाति रुद्रः ज्ञानप्रदः । यद्वा-"पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयति रुद्रः । " इस प्रकार अर्थके ज्ञानसे विशेष प्रतिपात्ति होनेसे श्रुतिमें भी विशेषफल प्रतिपादन कियाहै [उतत्वः पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः] इत्यादि मंत्रोंमें अर्थज्ञानकी प्रशंसा सुनी है, और [यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्यते । अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्] इत्यादि वाक्योंके द्वारा अर्थ न जाननेकी निन्दा सुनी है । दूसरा वचन भी निरुक्तमें लिखाहै [स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा] अर्थात्-जो वेद पढकर उसका अर्थ नहीं जानता वह ठूँठकी समान भार ढोनेवाला है । और जो अर्थको जानताहै वह सब कल्याणोंको प्राप्त होता है । और पापरहित हो वैकुण्ठको प्राप्त होताहै, इस वचनोंसे अर्थका जानना सम्पूर्ण कल्याणोंका करनेवाला है । जो कहते हैं कि " स्वाध्यायोऽध्येतव्यः " इस वचनसे पाठमात्रसे ही कर्मानुष्ठानमें सफलता होजाती है यह सत्य है, परन्तु अर्थज्ञानसे विशेष वीर्यवान् होताहै, इससे अर्थज्ञान अवश्य होनाचाहिये । इस विषयमें बहुतसे प्रमाण हैं, जिनका यहां लिखना हम उचित नहीं समझते वेदार्थज्ञानके निमित्त शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषकी आवश्यकता होती है । पर भाष्योंमें ये सब सुलभ होजाते हैं, इसकारण हमने संस्कृत और भाषा इन दो प्रकारोंसे रुद्राष्टाध्यायीका भाष्य आरंभ कियाहै ।

उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदिमें रुद्रजापका विशेष माहात्म्य वर्णन कियाहै मोक्षकी प्राप्ति, पापनाश, आरोग्य, आयुष्यकी प्राप्ति, रुद्रजापसे होती है ।

जाबाल उपनिषद्में लिखाहै-[अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किंजप्येनैवामृतत्वम्… इति ब्रूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेण इति] अर्थ-ब्रह्मचारियोंने … ल्क्यऋषिसे प्रश्न किया कि क्या जपनेसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै । याज्ञवल्क्यने … दिया कि शतरुद्रियके जपसे ।

कैवल्य उपनिषद्में लिखा है-(यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्निपूतो भवति स्व… त्पूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति ब्रह्महत्यातः पूतो भवति कृत्याकृ…

भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति अत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेदनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनं 'तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते' इत्याह शातातपः]

अर्थ--जो शतरुद्रिय पाठ करता है वह जैसे अग्निसे निकाले पदार्थ सुवर्ण आदि पवित्र होजाते हैं, तद्वत् पवित्र होताहै, सोनेकी चोरीके पापसे छूटजाताहै, सुरापानके पापसे रहित होताहै, ब्रह्महत्यासे पवित्र होताहै, कृत्याकृत्यसे पवित्र होताहै, आश्रमत्यागी भी एकबार पाठमात्रसे पवित्र होताहै, इसके जपसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, संसारसागरसे पार होजाता है । इस कारण इसको जानकर कैवल्यकी प्राप्ति होती है इस प्रकार शातातप कहते हैं ।

[स्तेयं कृत्वा गुरुदारांश्च गत्वा मद्यं पीत्वा ब्रह्महत्यां च धृत्वा । भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैरिति]

अर्थ-सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीमें गमन, मद्यपान, ब्रह्महत्यादि पाप करके सर्वांगमें भस्म लेपन करके भस्ममें शयन करनेवाला रुद्राध्यायीके पाठसे सब पापोंसे छूटजाताहै ।

याज्ञवल्क्य कहते हैं (सुरापः स्वर्णहारी च रुद्रजापी जले स्थितः । सहस्रशीर्षाजापी च मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।) अर्थात्-मद्य पीनेवाला सुवर्णकी चोरी करनेवाला जो जलमें स्थित होकर रुद्राध्यायका जप करताहै, तथा सहस्रशीर्षा इस अध्यायको पढताहै, वह सब पापोंसे छूटजाताहै । तथा च-(रुद्रैकादशिनीं जप्त्वा तदह्नैव विशुध्यति) अर्थात्-एकादश बार रुद्रजापसे उसी दिन शुद्ध होजाता है । महात्मा शङ्खजी कहते हैं (स्वर्णस्तेयी रुद्राध्यायी मुच्यते ।) अर्थात्-सुवर्णस्तेयी रुद्राध्यायके पाठसे मुक्त होताहै ।

"तथा च वायुपुराणे-

यश्च रुद्राञ्जपेन्नित्यं ध्यायमानो महेश्वरम् ।
यश्च सागरपर्यंतां सशैलवनकाननाम् ॥ १ ॥
सर्वान्नात्मगुणोपेतां सुवृक्षजलशोभिताम् ।
दद्यात्काञ्चनसंयुक्तां भूमिं चौषधिसंयुताम् ॥
तस्मादप्यधिकं तस्य सकृद्रुद्रजपाद्भवेत् ॥ २ ॥
मम भावं समुत्सृज्य यस्तु रुद्राञ्जपेत्सदा ॥
स तेनैव च देहेन रुद्रः संजायते ध्रुवम् ॥ ३ ॥"

अर्थ-वायुपुराणमें लिखाहै जो महेश्वरका ध्यान करताहुआ एकबार रुद्रोंका जप करताहै उसको, जो शैल वन काननके सहित, सब श्रेष्ठगुणोंसे युक्त, अच्छे वृक्ष और जलोंसे शोभित, सुवर्ण और औषधिसहित, समुद्रपर्यंत पृथिवीको दान करता है

इससे भी अधिक फल होताहै । अर्थात् रुद्रीजपका फल इससे विशेष है । और जो मम-त्वको छोडकर सदा रुद्रदेवका जप करताहै वह उसी देहसे निश्चय द्रह होजाता है ।

" चमकं नमकं चैव पौरुषसूक्तं तथैव च ॥
नित्यं त्रयं प्रयुञ्जानो ब्रह्मलोके महीयते ॥ १ ॥
चमकं नमकं होतृन्पुरुषसूक्तं जपेत्सदा ॥
प्रविशेत्स महादेवं गृहं गृहपतिर्यथा ॥ २ ॥
भस्मदिग्धशरीरस्तु भस्मशायी जितेन्द्रियः ॥
सततं रुद्रजाप्योऽसौ परां मुक्तिमवाप्स्यति ॥ ३ ॥
रोगवान्पापवांश्चैव रुद्रं जप्त्वा जितेन्द्रियः ॥
रोगात्पापाद्विनिर्मुक्तो ह्यतुलं सुखमश्नुते ॥ ४ ॥

अर्थ—चमकनमक अध्याय तथा पुरुषसूक्त तीन बार जपनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाताहै ॥ १ ॥ जो चमक नमक तथा पुरुषसूक्तका सदा जप करते हैं, वह महादेवमें ऐसे प्रवेश करजाते हैं जैसे गृहपति अपने घरमें प्रवेश करजाते हैं ॥ २ ॥ शरीरमें भस्म लगानेसे, भस्ममें शयन करनेसे जितेन्द्रिय होकर निरन्तर रुद्राध्यायका पाठ करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥ और जो रोगी तथा पापी भी जितेन्द्रिय होकर रुद्राध्यायका पाठ करे तो रोग और पापसे निवृत्त होकर महासुखको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥"

आहच शंखः—(रहसि कृतानां महापातकानामपि शतरुद्रियं प्रायश्चित्तमिति ।)

अर्थ—शंखऋषि कहते हैं गुप्तमहापातकोंकाभी प्रायश्चित्त शतरुद्रियका जप है ।

शतरुद्रिय इसका नाम इस कारण है कि रुद्रदेवता १०० संख्यावाले हैं यह रुद्रोपनिषद् है इसमें शिवात्मकब्रह्मका निरूपण है ।

ब्रह्मके तीन रूप हैं एक तो कार्यरूप, सबका उपादानकारण सर्वात्मक, दूसरा सृष्टिस्थितिसंहारनिमित्तक पुरुषनामवाला, तीसरा अविद्यासे परे निर्गुण निरञ्जन सत्य ज्ञान आनन्दके लक्षणवाला, यह रुद्रके मुख्य स्वरूप हैं ।

इस ग्रंथमें ब्रह्मके सगुण निर्गुण दोनों प्रकारके रूपोंका वर्णन है, परमात्माकी उपासना, भक्तिमहिमा, शान्ति, पुत्रपौत्रादिकी वृद्धि, नीरोगता, यज्ञिय पदार्थ आदि, कितनीही वस्तुओंका वर्णन है इसके पाठसे पाठकोंको यह भली प्रकारसे विदित होजायगा, कि यह मंत्रविभागरूप ग्रन्थ अल्पकालका नहीं है । जब कि उपनिषदें स्मृति पुराणोंमें इसके पाठका माहात्म्य वर्णन कियाहै तब प्राचीन समयमें ही कर्म यजुर्वेदसे कार्यके योग्य संग्रह होचुकाथा इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

जिस प्रकार पूजा पाठके गुटके विद्वान् महात्मा अपने पास रखतेहैं इसी प्रकार त्रिवर्णमात्रको यह ग्रंथ अपने पास रखना चाहिये। यद्यपि संस्कृतभाष्य तथा टीकों सहित यह ग्रंथ एक दो जगह प्रकाशित हुआ है पर उसमें सर्वसाधारणकी उपयोगिता न होनेके कारण हमने उन त्रुटियोंको इसमेंसे दूर करके द्विजमात्रके उपयोगी इस ग्रंथको बनादियाहैं।

इसका क्रम इस प्रकारसे रक्खाहै कि पहले मंत्र, फिर उसका ऋषिछन्द-देवत तथा विनियोग, संस्कृतमें पदार्थके सहित मंत्रभाष्य, पीछे भाषामें सरलार्थ वर्णन कियाहै। साथमें इस बातका भी विचार रक्खाहै कि जिससे भाषामें भी वेदके मंत्रोंका अर्थ ऐसा रहना चाहिये कि जिससे वेदार्थका विज्ञान भलीप्रकार होजाय।

इसी शैलीसे यजुर्वेदीय उपासनाकाण्ड तथा मंत्रार्थदीपिका यह और दो ग्रंथ तैयार होरहेहैं, और आशा है कि वह बहुत शीघ्र तैयार होजायँगे।

एक बात हमको यहां विशेषरूपसे और कहनाहै, वह यह है कि इस समय भी देशमें पण्डितोंकी कमी नहीं है तथा अनुवादके ग्रंथ भी तैयार होतेहैं पर जहांतक हम देखतेहैं बहुत कम तैयार होतेहैं, हां जिनके पास कुछ मसाला है वह केवल अपना महत्त्वविधायक ग्रंथ बनाकर छपादेतेहैं जिससे धार्मिकसमूहोंको कोई लाभ नहीं पहुँचता, देखिये महाराजा बुक्कने सायणाचार्यजीसे वेदोंका भाष्य कराकर कितना जगत्का उपकार कियाहै, अब भी श्रीमानोंके नरपतियोंके दूसरे कार्योंमें सहस्रों नहीं लक्षों रुपये व्यय होते हैं यदि थोडी भी श्रीमानोंकी कृपादृष्टि इधर होजाय और चारों वेदों, ब्राह्मणभागोंका रहस्योंके सहित हिन्दीभाषामें अनुवाद होजाय तो जगत्का कितना उपकार होसकताहै, जगत्में वेदोंका महत्त्व बहुत शीघ्र प्रकाशित होसकताहै।

महामण्डलके नेताओंका ध्यान हम इस ओर आकर्षित करतेहैं कि, आपलोगोंने प्रयाग जैसे पवित्र तीर्थराजमें कुम्भपर क्या क्या प्रतिज्ञायें की थीं, काशीमें ब्रह्मचारीआश्रम खोलनेको कहाथा, शास्त्रप्रचारविभागसे वैदिकग्रंथोंके निकालनेकी प्रतिज्ञा की थी, धर्मवक्ताओंको मूलसहायक समझकर उनके उत्साहवृद्धिका प्रण कियाथा, धर्मसभाओंको लाभ पहुँचानेका वचन दियाथा, आजतक उसमेंसे एक बात भी हुई? एक भी नहीं, केवल आशाही आशा शब्द सुनाई आये यदि ऊपरी बात छोडकर कर्तव्यपालन कियाजाय तो बहुत कुछ उपकार होसकताहै, यदि कोई अपने पुरुषार्थसे कोई कार्य करै और दूसरा उसके अपना कर्तव्य बतावै तो यह भुलावा या पालसीके सिवाय और क्या है।

हां यदि शास्त्रप्रचार, विद्याप्रचार, धर्मप्रचारमें हम वैश्यवंशावतंस देशहितैषी धर्मप्रचारनिरत श्रेष्ठी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदय मालिक "श्रीवेंकटेश्वर"

यंत्रालयको सहस्रों धन्यवाद दें तो भी उनके लिये वह थोडे हैं, कारण कि आपने बहुतसा धन व्यय कर तथा परिश्रम उठाकर पुरातन उपयोगी ग्रंथोंकी खोज कर सर्वसाधारणके उपकारके निमित्त भाषानुवादसहित अनेक ग्रंथोंको प्रकाशित कियाहै और कररहेहैं, हम परमात्मासे चाहते हैं प्रार्थना करतेहैं कि, उक्त सेठजी दीर्घायु होकर पुत्रपौत्रोंकी तथा लक्ष्मीकी वृद्धिके सहित संसारका उपकार करतेहुए चार पदार्थोंके भागी हों ।

उन्ही सर्वगुणसम्पन्न सेठजीके लिये मैंने यह परमोपयोगी ग्रन्थ निर्माण करके सब प्रकारके स्वत्वसहित प्रकाश करनेको समर्पण करदिया है, इसके प्रकाशादि करनेके वही अधिकारी है ।

यहां यह कहदेना भी परम उपयोगी है कि इस भाष्यअनुवादमें श्रीसायणाचार्य, श्रीमहीधर और श्रीउव्वटजीके भाष्योंसे बहुतकुछ संग्रह कियाहै ।

इस प्रकारसे यह ग्रंथ पाठकोंके अवलोकनार्थ उपस्थित है, यदि इसमें कोई त्रुटि रहगई हो तो पाठकगण अपनी उदारतासे उसे क्षमा कर सूचना देंगे तो दूसरी बारमें ठीक करलीजायगी ।

सज्जनोंका अनुगृहीत—

आषाढकृष्ण १३
संवत् १९६६

ज्वालाप्रसादमिश्र,
दिनदारपुरा
मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

अथ पूजाप्रयोगः ।



आचम्य प्राणानायम्य नमस्कारं कुर्यात् । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । इष्टदेवताभ्यो नमः । श्रीमदुमामहेश्वराभ्यां नमः । कुलदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ॥
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ १ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ॥
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ २ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ॥
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ३ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् ॥
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ४ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ॥
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ५ ॥
सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तु ते ॥ ६ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममंगलम् ॥
येषां हृदिस्थो भगवान्मंगलायतनं हरिः ॥ ७ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ॥
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ८ ॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ॥
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥ ९ ॥
विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥
सरस्वतीं प्रणौम्यादौ सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ १० ॥

अथ सङ्कल्पः ।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्यब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकवासरे अमुकतिथौ अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते भास्करे

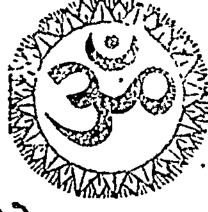
शेषेषु ग्रहेषु यथास्थानास्थितेषु सत्सु एवंगुणविशिष्टायां पुण्यतिथौ ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थम्, ऐश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम् अप्राप्तलक्ष्मीप्राप्त्यर्थम् । प्राप्तलक्ष्म्याश्चिरकालसंरक्षणार्थम्, सकलकामनासंसिद्ध्यर्थम्, सर्वत्र यशोविजयलाभादिप्राप्त्यर्थम्, जन्मजन्मान्तरदुरितोपशमनार्थम्, मम सभार्यस्य सपुत्रस्य सबान्धवस्याखिलकुटुम्बसहितस्य सपशोः समस्तभयव्याधिराजपीडामृत्युपरिहारद्वारा आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं तथा मम जन्मराशेः सकाशाद्ये केचिद्विरुद्धचतुर्थाष्टमद्वादशस्थानस्थितक्रूरग्रहास्तैस्सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशद्वारा एकादशस्थानस्थितवच्छुभफलप्राप्त्यर्थम् पुत्रपौत्रादिसन्ततेरविच्छिन्नवृद्ध्यर्थमाधिदैविकाधिभौतिकाध्यात्मिकत्रिविधतापोपशमनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्राप्त्यर्थं रुद्राभिषेकानन्तरं श्रीरुद्राष्टकस्य पाठमहं करिष्ये ।

अथ रुद्राभिषेकप्रकारः ।

ॐ यज्जाग्रत इत्यादिभिर्विभ्राडित्यनुवाकान्तैः पञ्चभिरंगमन्त्रैः पूर्वमभिषेकः । ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ नमस्ते रुद्रेत्यादिना तमेषां जम्भे दध्मः । ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ इत्यन्तेनाष्टप्रणवयुक्तेन रुद्राध्यायेन चाभिषेकः । ॐ वयꣳ सोमेत्यष्टाभिः कण्डिकाभिश्च काण्वानां तु सप्तकण्डिकाभिरिति विशेषः । ॐ उग्रश्चेति तिसृभिः सप्तभिर्वा रुद्रजटानाम्नीभिश्चेति परशुरामादयः निर्मूलत्वान्नेति देवयाज्ञिकादयः ॥ ॐ वाजश्च मे इत्यष्टानुवाकात्मकेन चेति देवयाज्ञिकाः । महच्छिरसाभिषेकपक्षेन चमकानुवाकैराभिषेकः । चमकानुवाकैराभिषेकपक्षे तु न महच्छिरसाभिषेकः इत्यपरे । ॐ ऋचं वाचं प्रपद्य इति शान्त्यध्यायेन शान्तिकरणम् । ॐ शान्तिरिति त्रिरुच्चारणं वा इत्येको रुद्राभिषेकप्रकारः ॥

अथापरप्रकारः । ॐ यज्जाग्रत इत्यादिभिर्नमस्ते रुद्रेति रौद्राध्यायान्तैः षड्भिरंगमंत्रैः पूर्वमभिषेकः । ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ नमस्ते रुद्रेत्यादिना तमेषां जम्भे दध्मः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ओमित्यन्तेनाष्टप्रणवयुक्तेन रौद्राध्यायेनाभिषिच्य ॐ वयꣳ सोमेत्यष्टभिः कण्डिकाभिरभिषेकः । ॐ उग्रश्चेति तिसृभिः सप्तभिर्वा । महच्छिरो रुद्रजटाभ्य अभिषेकाऽभावपक्षे तु ॐ वाजश्च म इत्यष्टानुवाकेनाभिषेकः । ॐ ऋचं वाचमिति शान्त्यध्यायेन पक्षद्वयेऽपि शान्तिकरणम् । ॐ शांतिरिति त्रिरुच्चारणं वा इति द्वितीयप्रकारः ।

बृहत्पाराशरस्मृतिमते तु—षडंगमन्त्रपूर्वकरौद्राध्यायस्यैव जपोऽन्ते च शान्तिकरणमित्ययमेव रुद्रजपो न तु पुनरन्यस्य कस्यचिन्मंत्रस्य जप इति विशेषः । एवमभिषिच्य षट्षष्टिर्नीलसूक्तं च पुनः षोडशर्चो जपेत् । एष ते द्वे नमस्ते द्वे नतं विद्वयमेव च । मीढुष्टमेति चत्वारि ह्येतच्च शतरुद्रियम् । नीलसूक्तं वयꣳ सोमेत्यष्टौ । इति तृतीयप्रकारः ।



श्रीवेदपुरुषाय नमः ।

अथ रुद्राष्टाध्यायी ।

भाष्यसहिता ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

मंत्रः ।

हरिः ॐ ॥ गणानान्त्वागणपतिꣳहवामहे प्प्रियाणान्त्वाप्प्रियपतिꣳहवामहेनिधीनान्त्वानिधिपतिꣳहवामहेव्वसोमम ॥ आहमजानिगर्ब्भधमात्वमजासिगर्ब्भधम् ॥ १ ॥

ॐ गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आर्षी बृहती छंदः । लिङ्गोक्ता देवता अश्वप्रक्रमणे विनियोगः । व्वसोममेत्यस्य साम्नीपंक्तिश्छन्दः । महिष्या अश्वसमीपे संवेशने विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्—हे ब्रह्मणस्पते वयम् (गणानाम्) गणानां मध्ये (गणपतिम्) गणाः कूष्माण्डादयः तेषां पालकम् । यद्वा—गणनीयानां पदार्थसमूहानां स्वामिनम् (त्वा) त्वाम् (हवामहे) आह्वयामः । (प्रियाणाम्) वल्लभानामिष्टमित्रादीनां मध्ये (प्रियपतिम्) प्रियस्य पालकम् (त्वा) त्वाम् (हवामहे) आह्वयामः । (निधीनाम्) निधयः पद्मादयः निधीनां मध्ये (निधिपतिम्) सुखनिधेः पालकम् (त्वा) त्वाम् (हवामहे) आह्वयामः । विघ्नोपशमाय भार्यादिप्रियलाभाय च त्वाम् आह्वयामीति वाक्यार्थः (वसो) वसत्यस्मिन्सर्वं जगद्वा यत्र वसति स वसुः तत्सम्बुद्धौ हे वसो सर्वभूतदेव ! त्वम् (मम) मम पालको भूया इति शेषः । हे प्रजापते (गर्भधम्) गर्भं करोति दधातीति गर्भधं गर्भधारकं रेतः । अर्थात् कर्मफलप्रजननसामर्थ्यधारकं श्रद्धाख्य-

मुदकम् 'रेत' उदकनामसु पठितम्, [निघं० १।१२] (आ अजानि) आकृष्य क्षिपामि श्रद्धया स्वीकृत्य फलोन्मुखीकरोमि (त्वम्) त्वञ्च (गर्भधम्) रेतः श्रद्धाख्य-मुदकम् (आ अजासि) श्रद्धयाकृष्य क्षिपसि श्रद्धयाकृष्टा देवताः कर्मफलप्रदानमवश्यं कुर्वंति (यजु० अ० २३ मं० १९)

प्रमाणानि–गणानान्त्वागणपतिᳬहवामह इति पत्न्यः परियन्त्यपह्नुवत एवास्मा एत-द्दतोन्वे वास्मै हुवतेऽथो धुवत एवैनं त्रिः पारयन्ति त्रयो वा इमे लोका एभिरेवैनं लोकै-र्धुवते । त्रिः पुनः परियन्ति षट् सम्पद्यन्ते षड्वाऽऋतव ऋतुभिरेवैनं धुवते ४ अप वा एतेभ्यः प्राणाः क्रामन्ति ये यज्ञे धुन्वनं तन्वते नवकृत्वा परियन्ति नव वै प्राणाः प्राणा-नेवात्मन्दधते नैभ्यः प्राणाः अपक्रामन्त्याहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधमिति प्रजा वै पशवो गर्भः प्रजामेव पशूनात्मन्धत्ते [श० कां० १३ अ० २ ब्रा० २ कं० ४–९] गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे०ब्रह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणैवेनं तद्भिषज्यति [एतरे० पं० १ कं० २१] राष्ट्रमश्वमेधोज्योतिरेव तद्राष्ट्रे दधाति [श० कां० १३ अ० २ ब्रा०२ कं० १६] अयं मन्त्रः संहितायामश्वमेधप्रस्तावे पठितस्त-त्राश्वस्तुतिरस्य मंत्रस्य वाच्योऽर्थः । स च यजमानपत्नीनां परिक्रमन्तीनां कर्त्रीणामतो वयमिति बहुवचनान्तनास्मदो निर्देशः । सद्भावेऽपि बह्वीनां पत्नीनां यस्य न स्यात्पु-त्रोत्पादनं तेनाप्यस्य कर्त्तव्यता ज्ञायते ॥ १ ॥

भाषार्थ–हे प्रजापते गणपते ! हम कूष्माण्डादि गणोंके मध्यमें गणपतिरूपसे वा गणनीय-पदार्थोंके मध्यमें स्वामीरूपसे आपको बुलाते हैं, प्यारे इष्टमित्रादिके मध्यमें प्रियजनोंके पालक आपको बुलाते हैं, पद्मादिनिधियोंके मध्यमें सुखनिधिके पालक आपको हम बुलाते हैं, आशय यह कि विघ्नशान्ति और भार्यादि प्रियजनोंके लाभके निमित्त हम आपकी स्तुति करते हैं । हे हमारे सर्वस्वधन ! तुम हमारे पालक हो "अहं त्वया अजानि" आपने हमको प्र-गट किया है मैं गर्भसे उत्पन्न हूं आप अज अविनाशी सब जगत्को गर्भद्वारा प्रगट करते हो, जीव गर्भद्वारा प्रगट होताहै और आप स्वतंत्रतासे प्रगट हुएहो, और तुमसे सब जगत् प्रगट होताहै । १ यजुर्वेद श्रौत कर्मानुष्ठानमें यह मंत्र अश्वमेध प्रकरणोंमें प्रजापतिरूप अश्व-की स्तुतिमें है, इससे राजामें क्षात्रतेज और वैश्यमें वैश्यत्व वृद्धिको प्राप्त होताहै, और जिस सार्वभौम महीपालके सन्तान न हो अश्वमेध यज्ञसे उसके सन्तान होतीहै । इस अनुष्ठानमें महिषी पुत्रवती होती है इस अनुष्ठानमें इस कण्डिकाके पहले तीन मंत्रोंसे पत्नी तीन प्रद-क्षिणा करे, तीन प्रकार इस भांति प्रदक्षिणा करनेसे प्रजापति देवताके ध्यानसे मानो त्रिलो-कीकी परिक्रमा की, फिर तीन परिक्रमा करनेसे छः होती हैं, ऐसा करनेसे, मानो छः ऋतुओंसे समृद्धि की, फिर तीसरे मंत्रसे तीन परिक्रमा करनेसे, मानो नौ प्राण आत्म-धारण कियेजाते हैं, फिर वे प्राण दृढ होजाते हैं, वह जो अश्व विश्वकी परिक्रमा क आया है उसके प्रभावसे पत्नीमें दृढ प्राणवाला पुत्र चक्रवर्ती होताह उस प्राणबलके सम्ब-न्ध उपरान्त पत्नी 'आहमजानि०' इस मंत्रार्थको धारण करे । अध्यात्ममें प्रजापशु ... प्रजापशुमें आत्माको धारण कियाजाताहै, परिक्रमाके समय पत्नीद्वारा उच्चरितमंत्र

हे देवगणोंके मध्यमें गणरूपसे पालक ! आपको हम बुलाती हैं, प्रियोंके मध्यमें प्रियोंके पालक अथवा सबसे अधिक होनेसे आत्मा ही प्रियपति है कारण कि, आत्माके निमित्त सबको त्यागदेना होताहै, इससे प्रियपति आपको हम बुलाती हैं, सुखनिधियोंके मध्यमें वा विद्याआदि पोषण करनेवालोंके मध्यमें सुखनिधिके पालक आपको हम बुलाती हैं, हे प्रजापते ! व्यापक होकर सब जगत्में निवास करनेके कारण तुम मेरे पालक हूजिये । (अगले मंत्रसे अश्वका स्पर्श कर परमेश्वरसे प्रार्थना है) मैं गर्भके धारण करनेवाले रेत अर्थात् कर्मफल उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य धारण करनेवाले श्रद्धानामक जलको सब प्रकारसे आकर्षण करतीहूं, अर्थात् श्रद्धासे स्वीकार करके फलके उन्मुख करतीहूं, आप गर्भधारण कराते अर्थात् श्रद्धानामक जलको आकर्षण कर उत्सर्ग अर्थात् फलोन्मुख करतेहो । अथवा गर्भके समान सब संसारकी धारक प्रीतिके धारण करनेवाले वा अपनी शक्तिसे जगत्के अनादिकारण गर्भके धारण करनेवाले, वा सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थोंकी रचना करनेवाले आपको सब प्रकारसे सन्मुख करतीहूं, सब जगत्के तत्त्वोंमें गर्भरूप बीजको धारण करनेवाले आप सब प्रकार जानते वा सन्मुख होते हो ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ॥ बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ २ ॥

ॐ गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । उष्णिक् छन्दः । अश्वो देवता । अश्वशरीरे रेखाकरणे विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्–हे अश्व (गायत्री) गायत्री (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् (जगती) जगती (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् (पंक्त्या सह) पंक्त्या सह (बृहती) बृहती (उष्णिहा सह) उष्णिहा सह (ककुप्) ककुप् एतानि छन्दांसि (सूचीभिः) एताभिः सूचीभिः (त्वा) त्वाम् (शम्यन्तु) संस्कुर्वन्तु "विशो वै सूच्यो राष्ट्रमश्वमेधो विशं चैवास्मिन् राष्ट्रे समीची दधाते" [श० १३ । २ । १०२] अश्शो यत ईश्वरो वा अश्वः [१३ । ३ । ८ । ८] [यजु० २३ । ३३] ॥ २ ॥

भाषार्थ–हे अश्वरूप देव ! गायत्री अर्थात् गानेवालेका रक्षक गायत्रीछन्द, तीनों तापोंका रोधक त्रिष्टुप्छन्द, जगत्में विस्तीर्ण जगती छन्द, संसारका दुःखरोधक अनुष्टुप्, पंक्तिछन्दके साथ बृहती, प्रभातप्रियकारी उष्णिक्छन्द, अच्छे पदार्थोंवाला ककुप्छन्द, सूचियोंद्वारा तुमको शान्त करें। प्रजाका नाम पक्षान्तरमें सूची राष्ट्र अश्वमेध है यही राज्यको शान्त रखती है ॥२॥

ब्रह्मस्तुतिपक्षमें–गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक्, ककुप्छन्द, इन सबके द्वारा सब दिशाओंमें सुन्दर उक्तियोंके द्वारा सब कोई आपकी स्तुति प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

२४ अक्षरका गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् ४४ का, जगती ४८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, उष्णिक् २८, पंक्ति ४० अक्षरका होता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ॥ विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३ ॥

ॐ द्विपदेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । अश्वो देवता वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(द्विपदाः) द्वे पदे यासां ता द्विपदाः (याः) याः (चतुष्पदाः) चतुष्पदाः (याः) याः (त्रिपदाः) त्रिपदाः (याः) याः (षट्पदाः) षट्पदाः (याः) (विच्छन्दाः) विगतं छन्दो याभ्यस्ताः छन्दोलक्षणहीनाः (याः) (सच्छन्दाः) छन्दोलक्षणयुताः ताः सर्वा छन्दोलक्षणजातयः (सूचीभिः) सूचीभिः (त्वा) त्वाम् (शम्यन्तु) संस्कुर्वन्तु [यजु० २३ । ३४] ॥ ३ ॥

भावार्थ-दो पदोंवाले, जो चार पदोंवाले, तीन चरणोंवाले और जो छहपदोंवाले, तथा छन्द-लक्षणोंसे हीन और जो छन्दलक्षणोंसे युक्त छंद हैं वे सब छन्द सूचीद्वारा तुमको शान्त करें वा संस्कार करें । अर्थात्-इन छन्दोंके उच्चारणसे तुममें शान्ति विराजमान हो ।

हे भगवन् दुपाये (पक्षी और मनुष्यादि), चौपाये, तीनपदोंवाले, पराधीन और स्वाधीन सबही सुन्दरउक्तियोंसे आपकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ॥ पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥ ४ ॥

ॐ सहस्तोमा इत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः पशो देवता पाठे विनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्—(सहस्तोमाः) स्तोमैः त्रिवृत्पञ्चदशादिभिः सह वर्तमानाः सहस्तोमाः (सहच्छन्दसः) गायत्र्यादिभिः छन्दोभिः सह वर्तमानाः (आवृतः) आवर्तमानाः (सहप्रमाः) प्रमितिः प्रमा यज्ञस्येयत्ता परिज्ञानं तेन सह वर्तमानाः (दैव्याः) देवस्य प्रजापतेः सम्बन्धिनः (ऋषयः) द्रष्टारः (सप्त) सप्तसंख्याकाः शीर्षण्याः। यद्वा—मरीचिप्रमुखाः सप्तर्षयः होत्रादयः सप्त वषट्कर्तारो वा एते (पूर्वेषाम्) पूर्वपुरुषाणामङ्गिरःप्रभृतीनां विश्वसृजां देवानां वा (पन्थाम्) अनुष्ठानमार्गम् (·) अनुदृश्य) क्रमेण ज्ञात्वा (धीराः) धीमन्तः सन्तः (अन्वालेभिरे) क्रमेणारब्धवन्तः; यागानुष्ठाने प्रवृत्ता इत्यर्थः । (न) यथा (रथ्यः) रथेन युक्ताः रथस्य नेतारः सूताः (रश्मीन्) रथे अश्वनियोजनार्थान् प्रग्रहान् सम्यग्रथस्य नयनाय हस्तेनान्वारभन्ते । यद्वा, दैव्याः सप्तर्षयः, देवस्य प्रजापतेः इमे दैव्याः प्रजापतिप्राणाभिमानिनः सप्तर्षयः भरद्वाजकश्यपगौतमात्रिवसिष्ठविश्वामित्रजमदग्निसंज्ञाः अन्वालेभिरे सृष्टवन्तः सृष्टियज्ञमिति शेषः । किं कृत्वा, पूर्वेषां पन्थानमनुदृश्य—अधस्तनकल्पोत्पन्नानामवाप्ताधिकाराणां मार्गं विलोक्य पूर्वकल्पोत्पन्नैर्ऋषिभिर्यथा सृष्टं तथा सृष्टवन्त इत्यर्थः "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति श्रुतेः । कथमिव रथ्यो न रश्मीन् नकार उपमार्थः । रथी यथा इष्टदेशप्राप्त्यर्थं प्रथमं रश्मीन्प्रग्रहानालभते स्पृशति सृजति वा, तथा तेऽपि सृष्टियज्ञं सृष्टवन्तः । किम्भूताः ऋषयः स्तोमसहिताः गायत्र्यादिभिः सहिताः (आवृतः) आवृत्तशब्देन कर्मोच्यते सहावृतः कर्मसहिताः श्रद्धासत्यप्रधानानां कर्मणामनुष्ठातारः (सहप्रमाः) प्रमाणं प्रमा तत्सहिताः शब्दप्रमाणपरीक्षणतत्पराः (धीराः) धीमन्तः [यजु० ३४ । २९] ॥ ४ ॥

भाषार्थ—शब्दप्रमाणके जाननेवाले धीर 'त्रिवृत्पंचदशादि स्तोम' गायत्र्यादि छन्द और यज्ञका परिमाण इनके सहित वर्तमान देवप्रजापतिके सम्बन्धी सप्तऋषिस्थानिक चक्षुआदिक (चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिरिति श्रुतेः) अथवा मरीचि आदिक अपने पूर्वज अंगिरा आदिक महर्षियोंका अनुष्ठित समझकर सर्वज्ञकी समान यज्ञमें प्रवृत्त हुए, जैसे रथयुक्त घोडोंकी लगाम पकडकर सारथि रथको भलीप्रकार चलाताहै, अथवा प्रजापतिके प्राणाभिमानी सप्तऋषि—भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र और जमदग्निने पूर्वकल्पमें उत्पन्नहुए ऋषियोंके मार्गोंका अनुसरण करके इस सृष्टियज्ञका आरंभ किया अर्थात्, जैसे पूर्वकल्पमें सृष्टि हुईथी उसी प्रकार सृष्टि की, जैसे रथी घोडोंको वशमें रखनेके लिये पहलेही लगाम बनाता है इसी प्रकार सृष्टिकार्यकी सुशृंखलाके लिये सबसे पहले यह ऋषि प्रगट हुए और सृष्टिकार्य किया ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒-

वैति ॥ दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्त-
न्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

ॐ यदित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । मनो देवता । पाठे विनियोगः ॥ ५ ॥

भाष्यम्-(यत्) यन्मनः (जाग्रतः) जाग्रतः पुरुषस्य (दूरम् उदैति) उद्गच्छति चक्षुराद्यपेक्षया दूरगामीत्यर्थः । यच्च (दैवम्) दीव्यति प्रकाशते देवो विज्ञानात्मा तत्र भवं दैवमात्मग्राहकमित्यर्थः (तत उ) यदः स्थाने तच्छब्दः उकारश्चार्थः । यच्च मनः (सुप्तस्य) सुप्तस्य पुंसः (तथैव एति) यथा गतं तथैव पुनरागच्छति, यच्च (दूरंगमम्) दूरं गच्छतीति दूरंगमम्, अतीतानागतवर्तमानविप्रकृष्टव्यवहितपदार्थानां ग्राहकमित्यर्थः । यच्च मनः (ज्योतिषाम्) प्रकाशकानां श्रोत्रादीन्द्रियाणाम् (एकं ज्योतिः) प्रकाशकं प्रवर्तकमित्यर्थः । प्रवर्तितान्येव श्रोत्रादीन्द्रियाणि स्वविषये प्रवर्तन्ते आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थेनेति न्यायोक्तेर्मनःसम्बन्धमन्तरा तेषामप्रवृत्तेः (तत्) तादृशम् (मे) मम (मनः) मनः (शिवसङ्कल्पम्) शिवः कल्याणकारी धर्मविषयः सङ्कल्पो यस्य तादृशम् (अस्तु) भवतु मन्मनसि सदा धर्म एव भवतु न कदाचित्पापमित्यर्थः [यजु० ३४ । १] ॥ ५ ॥

भाषार्थ-जो मन, जागते पुरुषका चक्षुआदिकी अपेक्षासे दूर प्राप्त होताहै जो द्युतिमान् वा प्रकाशक देव विज्ञानात्माका ग्राहक है, वही सोतेहुए पुरुषके उसी प्रकारसे सुषुप्तिअवस्थामें फिर आगमन करताहै, जो दूर जानेवाला या अतीत-भविष्य-वर्तमान-विप्रकृष्ट व्यवहित पदार्थोंका ग्रहण करनेवाला है, और जो प्रकाशक श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी एक ज्योति है, अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंका चालक है, आत्मा मनसे, मन इन्द्रियसे, इन्द्रिय पदार्थोंसे संयोग करती है, विना इसके कुछ प्रवृत्ति नहीं होती, वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्पवाला धर्म विषयमें तत्पर हो मेरे मनमें कभी पाप न हो धर्महीं सदा प्रवृत्त हो ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

येनकर्माण्यपसोमनीषिणोयज्ञेकृण्वन्ति
विदथेषुधीराः ॥ यदपूर्वंयक्षमन्तःप्रजा-
नान्तन्मेमनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

ॐ येनेत्यस्य ऋष्यादिविनियोगः पूर्ववत् ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(अपसः) "अप इति कर्मनाम" [निघं० २ । १] अपो विद्यते येषां ते अपस्विनः कर्मवन्तः सदा कर्मनिष्ठा इत्यर्थः । (धीराः) धीमन्तः (मनीषिणः) मेधाविनः (यज्ञे) यज्ञकर्मणि (येन) मनसा सता (कर्म्माणि) कर्माणि (कृण्वन्ति) कुर्वन्ति मनःस्वास्थ्यं विना कर्मोऽप्रवृत्तेः केषु सत्सु (विदथेषु) ज्ञानेषु सत्सु विद्यन्ते ज्ञायन्ते तानि विदथानि तेषु यज्ञसम्बन्धिनां हविरादिपदार्थानां ज्ञानेषु सत्स्वित्यर्थः । (यत्) यच्च मनः (अपूर्वम्) न विद्यते पूर्वमिन्द्रियं यस्मात्तदपूर्वम् इन्द्रियेभ्यः पूर्वं मनसः सृष्टेः । यद्वा अपूर्वमनपरमबाह्यमित्युक्तेरपूर्वमात्मरूपमित्यर्थः । यच्च (यक्षम्) यष्टुं शक्तं यक्षम् यच्च (प्रजानाम्) प्रजायन्ते इति प्रजास्तासां प्राणिमात्राणाम् (अन्तः) शरीरमध्य आस्ते इतरेन्द्रियाणि बहिष्ठानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः । तादृशं मे मनः शिवसङ्कल्पमस्त्विति व्याख्यातम् [यजु० ३४ । २] ॥ ६ ॥

भावार्थ–कर्मानुष्ठानमें तत्पर बुद्धिसम्पन्न मेधावी; यज्ञमें जिस मनसे उत्तमकर्मोंको करते हैं जो प्राणिमात्रके शरीरमध्यमें स्थित हैं अर्थात् इन्द्रियबाह्य और मन अन्तरमें स्थित है यज्ञसम्बन्धि हवि आदि पदार्थोंके ज्ञानमें जो अद्भुत वा सबसे प्रथम वा आत्मरूप पूजनीयभावसे स्थित है वह मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयकसंकल्पवाला हो ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ॥ यस्मान्न ऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

ॐ यत्प्रज्ञानमित्यस्य ऋष्यादिविनियोगः पूर्ववत् ॥ ७ ॥

भाष्यम्–(यत्) मनः (प्रज्ञानम्) विशेषेण ज्ञानजनकम् (उत) अपि यन्मनः (चेतः) चेतयति सम्यग् ज्ञापयति तच्चेतः 'चिती संज्ञाने' सामान्यविशेषज्ञानजनकमित्यर्थः । (च) यच्च मनः (धृतिः) धैर्यरूपं मनस्येव धैर्योत्पत्तेर्मनसि धैर्यमुपचर्यते (यत्) यच्च (अमृतम्) आमरणधर्मि आत्मरूपत्वात् (प्रजासु) जनेषु (अन्तः) अन्तर्वर्तमानं सत् (ज्योतिः) सर्वेन्द्रियाणां प्रकाशकमुक्तमपि पुनरुच्यते (यस्मात्) मनसः (ऋते) विना (किञ्चन) किमपि (कर्म) कर्म (न क्रियते) जनैः सर्वकर्मसु प्राणिनां मनः पूर्वं प्रवृत्तेः मनःस्वास्थ्यं विना कर्माभावादित्यर्थः (तन्मे मनः) इति व्याख्यातम् [यजु० ३४ । ३] ॥ ७ ॥

भावार्थ–जो मन विशेषकर ज्ञानका उत्पन्न करनेवाला है और भली प्रकारसे सामान्यविशेष-ज्ञानका प्रगट करनेवाला, चित्स्वरूप और धैर्यरूप है, आत्मरूप होनेसे अविनाशी,

जो प्राणियोंके मध्यमें अन्तर वर्तमान प्रकाशक है, जिस मनके बिना कुछभी कार्य नहीं कियाजाता वह मेरा मन कल्याणकार्यमें संकल्पवाला हो ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

येनेदम्भूतम्भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतम-मृतेन सर्वम् ॥ येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥

ॐ येनेदमित्यस्य ऋष्यादिविनियोगः पूर्ववत् ॥ ८ ॥

भाष्यम्—(येन) (अमृतेन) शाश्वतेन मुक्तिपर्यन्तं श्रोत्रादीनि नश्यन्ति मनस्त्वनश्वरमित्यर्थः । मनसा (इदम्) (सर्वम्) सम्पूर्णम् (भूतम्) भूतकालसम्बन्धि वस्तु (भुवनम्) भवतीति भुवनं वर्तमानकालसम्बन्धि, (भविष्यत्) भविष्यतीति भविष्यत् (परिगृहीतम्) सर्वतो ज्ञातं भवति त्रिकालसम्बद्धवस्तुषु मनः प्रवर्तत इत्यर्थः । श्रोत्रादीनि तु प्रत्यक्षमेव गृह्णन्ति (येन) मनसा (सप्तहोता) सप्तहोतारो देवानामाह्वातारो होतृमैत्रावरुणादयो यत्र स सप्तहोता अग्निष्टोमे सप्तहोतारो भवन्ति । (यज्ञः) अग्निष्टोमादिः (तायते) विस्तार्यते (तन्मे मनः) इति व्याख्यातम् [यजु० ३४।४] ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस अविनाशी मनसे (मुक्तिपर्यन्त रहनेसे मनको अविनाशी कहा) यह सम्पूर्ण भूतकालसम्बन्धी वस्तु, वर्तमान कालसम्बन्धी, होनेवाले कालसम्बन्धी पदार्थ ग्रहण कियेजातेहैं, (त्रिकालसम्बन्धी वस्तुओंमें मन प्रवृत्त होताहै) जिसके द्वारा सात होता होतृ-मैत्रावरुणादि-वाला अग्निष्टोम यज्ञ विस्तार कियाजाताहै वह मेरा मन कल्याणकारी संक-ल्पवाला हो ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रति-ष्ठिता रथनाभाविवाराः ॥ यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतम्प्रजानान्तन्मे मनः शिवसङ्कल्प-मस्तु ॥ ९ ॥

ॐ यस्मिन्नित्यस्य ऋष्यादिविनियोगः पूर्ववत् ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(यस्मिन्) मनसि (ऋचः) ऋचः (प्रतिष्ठिताः) स्थिताः (यस्मिन्) मनसि (साम) सामानि प्रतिष्ठितानि (यजूꣳषि) यजुर्मन्त्राः प्र० मनसः स्वास्थ्य एव वेदत्रयीस्फूर्तेर्मनसि शब्दमात्रस्य प्रतिष्ठितत्वम् (रथनाभौ) रथचक्रनाभौ मध्ये (इव) यथा (आराः) आराः प्रतिष्ठिताः तद्वच्छब्दजालं मनसि । किञ्च (प्रजानाम्) प्रकृतीनाम् (सर्वम्) सर्वम् (चित्तम्) ज्ञानं सर्वपदार्थविषयि ज्ञानं (यस्मिन्) मनसि (ओतम्) प्रोतं निक्षिप्तं तन्तुसन्ततिः पटे इव सर्वं ज्ञानं मनसि निहितम्, तन्मे मनः (शिवसंकल्पम्) शान्तव्यापारम् (अस्तु) भवतु [यजु० ३४।५] ॥ ९ ॥

भाषार्थः-जिस मनमें ऋचाएँ अर्थात् ऋग्वेद स्थित है, जिसमें साम और यजुः स्थित हैं मनकीही स्वस्थतासे वेदत्रयकी स्फूर्ति होता है। जिस प्रकार रथचक्रकी नाभिमें आरे स्थित हैं इसी प्रकार मनमें शब्दजाल स्थित है, प्रजाओंका सब ज्ञान जिसमें, पटमें. तन्तुके समान ओतप्रोत है, वह मेरा मन कल्याणकारीकार्यमें संकल्पवान् हो ॥ ९ ॥

मन्त्रः ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते-भीशुभिर्वाजिनऽइव ॥ हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं-जविष्ठन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १० ॥

इति संहितायां रुद्रपाठे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ॐ सुषारथिरित्यस्य ऋष्यादिविनियोगः पूर्ववत् ॥ १० ॥

भाष्यम्-(यत्) मनः (मनुष्यान्) नरान् (नेनीयते) अत्यर्थमितस्ततो नयति । मनुष्यग्रहणं प्राणिमात्रोपलक्षणम् (इव) यथा (सुषारथिः) शोभनः सारथिः (अभीशुभिः) प्रग्रहैः (वाजिनः) वेगयुक्तान् (अश्वान्) अश्वान् नेनीयते । यद्वा तत्र दृष्टान्तः (सुषारथिः) शोभनः सारथिर्यन्ता (इव) यथा (अश्वान्) अश्वान् कशया (नेनीयते) नेनीयते द्वितीयो दृष्टान्तः (इव) यथा सुसारथिः (अभीशुभिः) प्रग्रहैः (वाजिनः) अश्वान्नेनीयत इत्यनुषङ्गः । उपमाद्वयं प्रथमायां नयनं द्वितीयायां नियमनम् । तथा मनः प्रवर्तयति नियच्छति च नरानित्यर्थः (यत्) यच्च मनः (अजिरम्) जरारहितं बाल्ययौवनस्थाविरेषु मनसस्तदवस्थत्वात् यच्च (जविष्ठम्) अतिजववद्वेगवत् जविष्ठम् "न वै वातात्किञ्चनाशीयोस्ति न मनसः किञ्च-

नाज्ञार्योऽस्ति" इति श्रुतेः । यच्च मनः (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदि प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य तत् हृद्येव मनः उपलभ्यते (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) इति व्याख्यातम् ॥ [यजु० ३४ । ६] ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो मन, मनुष्यादि जीवोंको इधर उधर लेजाता है, अर्थात्—मनकी प्रेरणासेही प्राणी कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, जैसे अच्छा सारथि लगामद्वारा वेगवान् घोडोंको लेजाताहै, जो मन बाल्य, युवा और जरासे रहित अतिशयवेगवान् तुल्यहृदयमें स्थित है, अर्थात्—जैसे सारथी लगामकी सहायतासे घोडोंको यथेच्छस्थलमें प्राप्त करताहै, इसी प्रकार चक्षुआदि इन्द्रियोंको अवलम्बन करके मनुष्यादिके शरीरके अंगप्रत्यंगको वारंवार विविधविषयोंमें प्रेरण करताहै, जो जरारहित और हृदयमें स्थित है वह मेरा मन कल्याणकार्यमें सङ्कल्पवाला हो ॥ १० ॥

इति श्रीरुद्राष्टके मुरादाबादनिवासि—पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य-भाषाभाष्यसमन्वितः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ॥ स भूमि॑ᳬ स॒र्वत॑ स्पृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥ १ ॥

ॐ सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । पुरुषो देवता । स्तुतिकरणे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्—(सहस्रशीर्षा) सहस्रमसंख्यानि सर्वप्राणिशिरांसि यस्य सः । सर्वस्थूलाङ्गोपलक्षणार्थमिदम् । (सहस्राक्षः) सहस्रमसंख्यान्यक्षीणि यस्य सः । सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षणार्थमिदम् । (सहस्रपात्) सहस्रं पादा यस्य सः । सर्वकर्मेन्द्रियोपलक्षणार्थमिदम् । एवंभूतः सः (पुरुषः) पूर्षु शेतेऽवतिष्ठते तस्मात्पुरुषोऽव्यक्तादपि परः साक्षी चेता परमात्मा (भूमिम्) पृथिव्यादिपंचभूतात्मकं सर्व भूमिमित्यपलक्षणं भूतानां (सर्वतः) विश्वतः (स्पृत्वा) परिवेष्ट्य नाभितः (दशांगुलम्) दशांगुलपरिमितं देशम् (अत्यतिष्ठत्) अतिक्रम्य व्यवस्थितः । हृदयदेशेऽतिष्ठत् स्थितोऽस्ति स एवैकस्तत्तद्देवतानामरूपैरुपास्यः । " सोयं विज्ञानमयः पुरुषः प्राणिषु हृदयं ज्योतिः" इति । दशांगुलमित्युपलक्षणं ब्रह्माण्डाद्बहिरपि व्याप्यावस्थित इत्यर्थः । [यजुर्वेदीयैकत्रिंशोऽध्यायः ।] ॥ १ ॥

भाषार्थ—अव्यक्त—महदादिसे विलक्षण, चेतन, श्रुतियोंमें प्रसिद्ध, सब प्राणियोंकी समष्टिरूप ब्रह्माण्डरूप देहयुक्त विराट्है वही अनन्तशिरोंसे युक्त है, जितने सब प्राणियोंके शिर हैं वह

सब उसके शिरके अन्तर्वर्ति होनेसे वह अनन्तशिर संपन्न है। सहस्रों नेत्रोंसे युक्त होनेसे सहस्राक्ष अर्थात् सब ज्ञानेन्द्रियसंपन्न है। सहस्रों चरणोंसे युक्त अर्थात् कर्मेन्द्रिय संपन्न होनेसे यह सहस्रपात् है वह पुरुष ब्रह्माण्डगोलकरूप भूमिको वा पंचभूतोंको तिर्यक्, ऊर्ध्व, नीचे, सब ओरसे व्याप्त करके दश अंगुल परिमित देशको अतिक्रमण करके स्थित हुआहै। दशांगुल ब्रह्माण्डका उपलक्षण है, अर्थात् ब्रह्माण्डसे बाहर भी सब ओर व्याप्त होकर स्थित है अथवा नाभिके स्थानसे दश अंगुल अतिक्रमण करके हृदयमें स्थित है; ("सोयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः" इति श्रुतेः) विज्ञानात्मा, हृदयमें कर्मफल भुगानेके निमित्त अवस्थान करताहै (द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति" ऋग्वेदः) इन लोकोंमें पूर्ण करने और शयन करनेसे वह पुरुष है ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

पुरुषऽएवेदꣳसर्वंꣳयद्भूतꣳयच्चभाव्यम् ॥
उतामृतत्त्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

ॐ पुरुष इत्यस्य ना० ऋ० । निच्युदार्षीजगतीछन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्-(इदम्) यत्किंचिद्वर्तमानकालीनं (यद्भूतम्) यदतीतकालीनं (यच्च) (भाव्यम्) भविष्यत्कालीनं तत् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (पुरुष एव) परमात्मा एव यथास्मिन्कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमिति भावः । (उत) अपि (अमृतत्वस्य) देवत्वस्य (ईशानः) स्वामी स पुरुषः (यत्) यस्मात् (अन्नेन) प्राणिनां भोग्येनान्नेन फलेन निमित्तभूतेन (अतिरोहति) स्वीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां, जगदवस्थां प्राप्नोति । तस्मात्पुरुष एव प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः। अमृतत्वस्यामरणधर्मस्येशानः मुक्तेरीशः यो हि मोक्षेश्वरो नासौ म्रियत इत्यर्थः ॥२॥

भाषार्थ-जो यह वर्तमान जगत् है, जो अतीत जगत् और जो जो भविष्य जगत् है वह संपूर्ण पुरुषही है अर्थात् जैसे इस कल्पमें वर्तमान प्राणियोंके देह विराट्पुरुषके अवयव हैं वैसे ही अतीत और आनेवाले कल्पोंके भी जानने और जो कि प्राणियोंके भोग्यसे वा अन्नरूप फलके निमित्तसे अपनी कारण अवस्थाको अतिक्रमण करके जगत्की अवस्थाको प्राप्त होताहै (अथवा अन्नके निमित्त जो संपूर्ण अतिरोहण जन्म मृत्यु होती हैं, उस संबन्धमें अमृतत्व देनेमें ईश्वर ही है) अर्थात् प्राणियोंके कर्मफल भुक्तानेको जगत्की अवस्था स्वीकार करताहै । यदि कहो कि जो सब पुरुष है तो परिणामी भी होसकताहै इसपर कहते हैं-मरणधर्मरहित मुक्तिका अधिपति अर्थात् संपूर्ण जीवोंका जो कि ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त हैं उनका अधिपति

पुरुष ही हैं, अर्थात् यही प्राणिगणको देवता करते हैं जिस कारण कि प्राणिगणके भोगोंके निमित्त अपनी कारण अवस्था परित्यागपूर्वक कार्यावस्था. अर्थात्–जगत्को स्वीकार करते हैं ॥ २ ॥

विशेष–भगवान् यदि स्वयं इस प्रकार अचिन्त्यशक्तिद्वारा जगत्अवस्थाको प्राप्त न हो तो यह जगत् किसीके संबन्धमें स्वर्ग और किसीके संबंधमें नरकरूप होजाय तो एकही वस्तुके लिये स्वर्गनरकत्वरूप विरुद्धधर्मका प्रकाश असंभव है। अनीश्वरवादी कहैंगे प्रकृतिका स्वभाव है, परन्तु आस्तिकगण कहैंगे जिसको नास्तिक प्रकृतिका स्वभाव कहते हैं उसीको हम ईश्वरकी अचिन्त्यशक्ति कहते हैं ॥ २ ॥

मन्त्रः।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ॥ पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥ ३ ॥

ॐ एतावानस्येत्यस्य नारायण ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–(एतावान्) अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति सर्वोपि (अस्य) पुरुषस्य (महिमा) स्वकीयसामर्थ्यविशेषः न तु तस्य वास्तवं स्वरूपम् (च) (पूरुषः अतः) अतो महिम्नोऽपि (ज्यायान्) अतिशयेन अधिकः (अस्य) पुरुषस्य (विश्वा) सर्वाणि (भूतानि) कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि (पादः) चतुर्थांशः (अस्य) पुरुषस्य अवशिष्टम् (त्रिपात्) त्रिपादस्वरूपम् (अमृतम्) विनाशरहितं सन् (दिवि) द्योतनात्मके प्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः। यद्वा त्रिपाद् विज्ञानमयानंदरूपं दिवि दिवोतने स्वमहिम्नि स्वर्ग द्वारे व्यातिष्ठतीत्यर्थः। यद्वा–योगिध्येयं तदेव त्रिपात् दिवि सत्यसंकल्पादौ गुणे स्थितमित्यर्थः ॥ ३ ॥

भाषार्थ–अतीत, अनागत, वर्तमान कालसे सम्बद्ध जितना जगत् है यह सब इस पुरुषकी सामर्थ्यविशेष विभूति है। वास्तविकस्वरूप नहीं है, और पुरुष तो इस महिमावाले जगत्से अतिशय अधिक है, संपूर्ण तीनकालोंमें वर्तनेवाले प्राणिसमूह इस पुरुषका चतुर्थांश है। इस परमात्माका अवशिष्ट त्रिपात्स्वरूप विनाशरहित प्रकाशात्मक अपने स्वरूपमें स्थित है। यद्यपि (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) इस तैत्तिरीयारण्यकके वचनसे ब्रह्मकी इयत्ता कोई निरूपण नहीं करसकता तोभी उसकी अपेक्षा यह जगत् अतिअल्प है, इस कारण पादरूपसे निरूपण किया है ॥ ३ ॥

मन्त्रः।

त्रिपादूर्द्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः॥ ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि॥ ४॥

ॐ त्रिपादूर्द्ध्वं इत्यस्य नारायण ऋषिः। आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। वि० पू०॥ ४॥

भाष्यम्-(त्रिपात्) योऽयं त्रिपात् (पुरुषः) संसारस्पर्शरहितः ब्रह्मस्वरूपः (ऊर्द्ध्वः) अस्मात् अज्ञानकार्यात् संसारात् बहिर्भूतोऽत्रत्यैः गुणदोषैरस्पृष्ट उत्कर्षेण (उदैत्) स्थितवान् वा पादत्रयस्वरूप ऋग्यजुःसामलक्षणो भगवानादित्यः सोऽभ्युदैत् कर्मबन्धनिन्बधनानां स्थावरजंगमादीनामुपरिभूतः (अस्य) (पादः) लेशः (इह) मायायां (पुनः) पुनरपि (आभवत्) सृष्टिसंहाराभ्यां पुनःपुनरागच्छति (ततः) मायायामागत्यानन्तरम् (विष्वङ्) देवतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् (साशनानशने) साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातं लक्ष्यते, अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकं तदुभयं यथा स्यात्तथा (अभि) स्वयमेव विविधो भूत्वा (व्यक्रामत्) व्याप्तवान्॥ ४॥

भाषार्थ-जो यह तीनपादयुक्त संसारस्पर्शरहित ब्रह्म, इस अज्ञानकार्यसंसारसे बहिर्भूत अर्थात्-इसके गुणदोषोंसे अस्पृष्ट होकर उत्कृष्टतासे स्थित हुआहै, इसका लेशरूप जगत् इस मायामें फिर प्राप्त होताहुआ, अर्थात्-सृष्टि संहार द्वारा वारंवार आगमन करताहुआ (विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्). मायामें आनेके उपरान्त देवतिर्यगादिमें विविधरूप होकर अशनादिव्यवहारयुक्त चेतनप्राणिसमूह इससे रहित गिरिनदीआदिक अर्थात्-स्थावर जंगमको देखकर व्याप्त करता हुआ। अर्थात् इन सबको निर्माण कर इनमें प्रवेश कर अनेक रूपसे व्याप्त हुआ॥ ४॥

मन्त्रः।

ततो विराडजायत विराजोऽअधिपूरुषः॥ स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ५॥

ॐ तत इत्यस्य ना० ऋ०। शेषं पूर्ववत्॥ ५॥

भाष्यम्–(ततः) अनन्तरमादिपुरुषात् (विराट्) ब्रह्माण्डदेहः (अजायत) उत्पन्नः (विराजः) विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट् (अधि) देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा (पुरुषः) तद्देहाभिमानी कश्चित्पुरुषमजायत योऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स एव स्वकीयमायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत् (सः) विराट् पुरुषः (जातः) जातः सन् (अत्यरिच्यत) अतिरिक्तोऽभूत् । विराडतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् (पश्चात्) देवादिजीवभावादूर्ध्वं (भूमिम्) ससर्जेति शेषः ,अनन्तरं तेषां जीवानां पुरः पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि ससर्ज ॥ ५ ॥

भावार्थ–इसके उपरान्त उस आदिपुरुषसे ब्रह्माण्डदेह–जिसमें अनेकप्रकारकी वस्तु विराजमान होतीहैं वह प्रकट हुआ, विराट्देहके ऊपर उसी देहको अधिकरण करके उस देहका अभिमानी एकही पुरुष हुआ, अर्थात्–संपूर्णवेदान्तसे जानने योग्य परमात्मा अपनी मायासे विराट्देह ब्रह्माण्डकी रचना कर उसमें जीवरूपसे प्रवेश करके उसका अभिमानी देवतात्मा जीवरूप हुआ, और वह विराट्पुरुष प्रगट होकर अतिरिक्त–देवता, तिर्यङ्, मनुष्यादिरूप हुआ, देवादिजीवभावके उपरान्त भूमिकी रचना करताहुआ, भूमिरचनाके उपरान्त उन जीवोंके सात धातुओंसे पूर्ण होनेवाले शरीरोंकी रचना करताहुआ ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् ॥ पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥

ॐ तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । आर्चीपंक्तिश्छन्दः । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(तस्मात्) (सर्वहुतः) (सर्वात्मकः) पुरुषो यस्मिन् यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुतः तादृशात्तस्मात् पूर्वोक्तात् मानसात् (यज्ञात्) पुरुषमेधाख्ययज्ञरूपात् सर्वव्यापकात् पुरुषचतुर्थपादात् (पृषदाज्यम्) दधिमिश्रमाज्यं (सम्भृतम्) समुत्पन्नम् भोगजातं सर्वं सम्पादितमित्यर्थः । तथा (तान्) (वायव्यान्) वायुदेवताकान् (पशून्) पशून् (चक्रे) उत्पादितवान् (ये) आरण्याः (हरिणादयः) च (ग्राम्याः) छागादयः तानपि चक्रे ॥ ६ ॥

भावार्थ–उससे सर्वात्मा पुरुष जिसयज्ञमें हवनद्वारा पूजेजाते हैं, उस पुरुषमेधयज्ञसे दधाश्रित घृत संपादित हुआ, दधि आज्य आदि भोग्यजात वस्तु पुरुषद्वारा प्रकट हुई और उस पुरुषने उन वायुदेवतावाले पशुओंको उत्पन्न किया "अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः" इति श्रुतेः) जो वनके पशु हरिणआदिक और ग्रामके पशु गा अश्व आदिक हैं ॥ ६ ॥

विशेषः-सर्व विश्व (संसार) पुरुष जिस यज्ञमें आहुतहुए, उस मानसयोगको सर्वहुत कहते हैं, सर्व प्रथम दधिघृतादि वस्तु प्रगट हुई, यहाँ दधिघृतादिभोग्य वस्तुसे वृक्षोंके रस विशेष जानने यह घृत, दधि उपलक्षण है। पर्वतवासी योगीगण इन्हीं वृक्षोंके पुष्पदाज्यस्वरूप अन्नफलोंको भोजन कर क्षुधा तृष्णा निवृत्त करते हैं, यहाँ दधि घृतसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके खाद्यपदार्थकी सृष्टि जाननी, कोई कहते हैं-उस सर्वहुत यज्ञपुरुषद्वारा दधिमिश्रित घृत संपादित हुआ, उससे ग्रामचारी अरण्यचारी और (च) कहनेसे नभश्चारी जीव उत्पन्न हुए। इस स्थलमें यथार्थ कर्तृत्व ब्रह्मको मानकर ब्रह्मसे अस्मदादिपर्यन्त यथार्थ कर्तृत्व नहीं है ऐसा दिखाया है इसीसे कहा है कि उससे प्रगट हुए ॥ ६ ॥

मन्त्रः।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ॥ छन्दांᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

ॐ तस्मादित्य नारायण ऋषिः। आर्ष्यनुष्टुप्०। पुरुषो देवता। वि० पू० ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(तस्मात्) (सर्वहुतः) सर्वैर्हूयमानात् (यज्ञात्) यज्ञपुरुषात् (ऋचः) ऋग्वेदाः (सामानि) सामवेदाः (जज्ञिरे) जाताः (तस्मात्) पुरुषात् (छन्दांᳬसि) गायत्रीप्रभृतीनि (जज्ञिरे) जाताः (तस्मात्) ब्रह्मणः (यजुः) यजुरपि (अजायत) जात इत्यर्थः ॥ ७ ॥

भाषार्थ-उस सर्वहुत यज्ञपुरुषसे ऋक्, साम, उत्पन्न हुए। उसीसे छन्द अथर्वमंत्र प्रकट हुए, उससे यज्ञात्मक यजुः प्रगट हुआ ॥ ७ ॥

मन्त्रः।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ॥ गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

ॐ तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः। निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छंदः। पुरुषो दे० वि० पू ॥ ८ ॥

भाष्यम्–(तस्मात्) (यज्ञात्) सर्वरूपयज्ञरूपात् (अश्वाः) अश्वाः (अजायन्त) प्रकटीभूताः (च) (ये के) (उभयादतः) अश्वव्यतिरिक्ता गर्दभादय ऊर्ध्वाधोभागयोर्दन्तयुक्तास्तेपि अजायन्त (ह) प्रसिद्धौ (तस्मात्) पुरुषात् (गावः) गावश्च (जज्ञिरे) अजायन्त (तस्मात्) सर्वव्यापकात् (अजावयः) अजा अवयश्च अजाः छागाः अवयो मेषाश्च (जाताः) जज्ञिरे । अत्र कण्डिकात्रय यत्किञ्चिद्धविरात्मकं विध्यर्थवादमन्त्राश्रया वेदाश्च पुरुषोत्तमात्पुरुषमेधयज्ञस्वरूपादेव सर्वं जातमिति वाक्यार्थः ॥ ८ ॥

भाषार्थ–उस यज्ञपुरुषसे घोडे उत्पन्न हुए जो कोई घोडोंसे अतिरिक्त गर्दभादि तथा ऊपरनीचेके दाँतोंसे युक्त हैं वे उत्पन्न हुए, प्रसिद्ध हैं कि उस यज्ञपुरुषसे गौएं प्रकट हुईं, उसीसे भेड बकरी उत्पन्न हुईं ॥ ८ ॥

विशेष–पूर्वमंत्रमें सामान्यतासे आरण्य और ग्रामके पशु उत्पन्न होने कहे, इस मंत्रमें यज्ञका-साधक विशेष पशुओंका निरूपण किया है । ब्राह्मणभागमें उनके चिह्न भी लिखे हैं । (स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत) अर्थ–जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट गोल बडे बडे चिह्नोंसे युक्त हो नेत्र सूर्य और अग्निके समान रक्तवर्ण हों, उस गौको यज्ञके घृत, दुग्धके निमित्त ग्रहण करके फिर प्रदान करदे । इत्यादि यहाँ याज्ञिय पशुओंका वर्णन कियाहै, इससे पाहिले ६ मंत्रोंसे इसमें भेद है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

तँ᳖ यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ॥
तेनदेवाऽअयजन्तसाध्याऽऋषयश्चये ॥ ९ ॥

ॐ तं यज्ञमित्यस्यर्ष्यादिपूर्ववत् ॥ ९ ॥

भाष्यम्–(अग्रतः) (जातम्) सृष्टेः पूर्वं जातम्, पुरुषत्वेनोत्पन्नं (तम्) (यज्ञम्) यज्ञसाधनभूतम् (पुरुषम्) यज्ञपुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं (बर्हिषि) मानसे यज्ञे (प्रौक्षन्) प्रोक्षितवन्तः मानसयागं निष्पादितवन्तः (तेन) पुरुषेण (साध्याः) सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः (देवाः) निर्जराः (च) (ऋषयः) मंत्रद्रष्टारः (अयजन्त) यागं कृतवन्तः । अत्र कारणे कार्योपचारात् यज्ञेन यज्ञसाधनमभिधीयते प्रौक्षन् ग्रहणं सकलसंस्कारोपलक्षणार्थं तथा च पुरुषं पृषदाज्यादिरूपं यज्ञसाधनभूतं प्रोक्षणादिसंस्कारैः संस्कृत्य तेन पृषदाज्यादिरूपेण देवा यागं कृतवन्त इति वाक्यार्थः ॥ ९ ॥

भाषार्थ–सृष्टिके पूर्वमें प्रकटहुए अर्थात्–पुरुषरूपसे प्रादुर्भूत उस यज्ञसाधनभूत पुरुषको मानसयज्ञमें प्रो[illegible]दि संस्कारोंसे संस्कार करतेहुए, उसी पुरुषसे जो साध्य देवगण और ऋषि अर्थात् सृष्टिसाधनयोग्य प्रजापति और उनके अनुकूल मंत्रद्रष्टा ऋषि मानसयागको निष्पन्न करतेहुए ॥ ९ ॥

मन्त्रः।

यत्पुरुषं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन्। मु॒खं किम॑स्यासी॒त्किं बा॒हू किमू॒रू पादा॑ऽउ॒च्येते ॥ १० ॥

ॐ यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषिः। नि० छं० पुरुषो दे० वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्-(यत्) यदा (पुरुषं) विराड्रूपं (व्यदधुः) प्रजापतेः प्राणरूपा देवाः संकल्पेनोत्पादितवन्तः (तदा) तस्मिन्काले (कतिधा) कतिभिः प्रकारैः (व्यकल्पयन्) विविधं कल्पितवन्तः (अस्य) पुरुषस्य (मुखम्) मुखम् (किम् आसीत्) किमासीत् (कौ बाहू) कौ बाहू अभूताम् (किम्) (ऊरू) की ऊरू (पादौ) कौ च पादौ उच्येते) पादावपि किमास्तामित्यर्थः। पुरुषावयवनिरूपणे द्विवचनम् ॥ १० ॥

भाषार्थ-प्रश्नोत्तर रूपसे ब्राह्मणादिकी सृष्टि कहते हैं-प्रजापतिके प्राणरूपदेवता तथा साध्य गणादि जिस समय विराट्पुरुषको संकल्पद्वारा प्रकट करतेहुए उस समय कितने प्रकारसे कल्पना करतेहुए अर्थात्-पूर्ण करतेहुए इस पुरुषका मुख क्या हुआ, क्या भुजा, क्या जंघा, कौन चरण कहे जातेहैं ॥ १० ॥

विशेष-पहिले सामान्यप्रश्न और मुखादि विशेषप्रश्न हैं, अर्थात्-देवगण सृष्टिके निमित्त मानसयाग विस्तार करके जिस समय निज अमोघ संकल्पद्वारा विराट्पुरुषको सृजन करतेहुए उस समय यह विराट् कितने प्रकारसे पूर्ण हुआ, क्या पदार्थ उसका मुख बाहु ऊरू और चरण हुआ। तात्पर्य यह है कि-ऋषियोंने मानसयागमें सूक्ष्मदृष्टिसे ब्रह्मरूप प्रजापतिके मुख बाहू आदि अंगोंका अवलोकन किया और उसमें ब्राह्मणादि जातिका वर्णन किया॥ १० ॥

मन्त्रः।

ब्रा॒ह्म॒णो॒ऽस्य॒ मुख॑मासीद्बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः। ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्याᳬं शू॒द्रोऽअ॑जायत ॥ ११ ॥

ॐ ब्राह्मणोस्येत्यस्य वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-ब्राह्मण इति पूर्वकण्डिकायां स्तुत्यर्थं विकल्पः कृतः आकाङ्क्षोत्थापना-त्र स्तुतिमाह-(ब्राह्मणः) ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषः (अस्य) प्रजापतेः (मुखम्) मुखम् (आसीत्) मुखादुत्पन्नः (राजन्यः) क्षत्रियः (बाहू कृतः) बाहुत्वेन निष्पादितः (अस्य) प्रजापतेः (यत्) यौ (ऊरू) (तद् वैश्यः) तद्रूपो वैश्यः सम्पन्नः ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । (पद्भ्याम्) पादाभ्यां (शूद्रः) शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः (अजायत) उत्पन्नः । अयमेव ब्राह्मणादिचतुष्टयरूप इति वाक्यार्थः । अयमेव कृष्णयजुःसंहितायां सप्तमकाण्डे स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत इत्यादौ विस्पष्टमाम्नातः ॥ ११ ॥

भाषार्थ-ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष इस प्रजापतिका मुख हुआ, अर्थात्-मुखसे उत्पन्न हुआ । क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट पुरुष बाहुरूपसे निष्पादित हुआ, अर्थात्-भुजाओंसे प्रकट हुआ । इसकी जो जंघा हैं वह वैश्य हुआ, चरणोंसे शूद्रजाति विशिष्ट पुरुष उत्पन्न हुआ, मुखादिसे ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति कृष्णयजुःके सप्तम कांडमें लिखी है, (स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत) तथा (तिसृभिरस्तुवतब्रह्मासृज्यत [१४ । २८ यजुः ०]) इस प्रकार स्पष्ट लिखी है, इसीसे सायणाचार्य और महीधरने इसी प्रकार अर्थ किया है यहां कल्पना और उत्पन्न होना दो शब्द इस कारण आये हैं कि, पुरुषमेधमें जो सब जातिके पुरुष बैठे हैं उनको विराट्रूपसे मानना कल्पना है और सृष्टिपक्षमें उत्पत्ति है इससे दो शब्द आये हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो॑ऽअजायत ॥ श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

ॐ चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋ० । आर्ष्यनुष्टुप् छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्-अस्य प्रजापतेः (मनसः) सकाशात् (चन्द्रमाः) शशी (जातः) उत्पन्नः (चक्षोः) चक्षुषः (सूर्यः) सूर्यः (अजायत) उत्पन्नः (च) (श्रोत्रात्) कर्णविवरात् (वायुः) पवनः (प्राणश्च) प्राणोऽपि (मुखात्) आस्यात् (अग्निः) वह्निः (अजायत) उत्पन्नः । अन्यत्र चन्द्रमाः सूर्यो बाहुभ्यो मनश्चक्षुः श्रोत्रेभ्य इति चन्द्रमःप्रभृतीनामुत्पत्तिरिति सृष्टिक्रमः । अत्र तु अचिन्त्यमहिम्नि पुरुषे मनश्चक्षुः श्रोत्रेभ्यः चन्द्रमःप्रभृतीनामुत्पत्तिक्रम इति विपरीतोऽर्थः स्तुतिरिति वाक्यार्थः ॥ १२ ॥

भावार्थ-जैसे गौआदि, ब्राह्मणादि उससे उत्पन्न हुएहैं, इसी प्रकार उसके मनसे चन्द्रमा प्रगट हुआहै, चक्षुओंसे सूर्य प्रगट हुआहै, श्रोत्रसे वायु और प्राण प्रगट हुए और मुखसे अग्नि प्रगट हुई ॥ १२ ॥

विशेष-यह जो अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा लक्षित होतेहैं इनमें चेतनता है या नहीं इसका विचार इस प्रकार जानना कि, इनमें अधिष्ठित होकर विराट्का अंश (शक्ति) चेतनवस्तु है, जिसको चन्द्र कहते हैं, वह चन्द्र देवताके रहनेका एक प्रधान गोलक इसी प्रकार दृश्यमान सूर्य, अग्नि भी सूर्य और अग्निदेवताके रहनेके प्रधान स्थान हैं, इसी प्रकार सबदेवताओंमें जानलेना । इन संपूर्ण देवताओंके प्रधान स्थान एक एक गोला होकर भी इनके संपूर्ण अंश अपने अपने कारणस्थानमें अधिष्ठातृदेवता होकर अवस्थान करते हैं जिस प्रकार जलका प्रधानस्थान समुद्र होकर भी उसके किंचित् २ अंश सबजीवोंमें हैं इसी प्रकार विराट्के मनसे समष्टि चन्द्र हुआ उसके कुछ २ अंश कारणस्थान मनमें स्थित हो अधिष्ठातृ देवतारूपसे अवस्थान करते हैं अधिष्ठातृदेवता ही अधिष्ठानका चालक होता है । इसी प्रकार सूर्यका भी प्रधानस्थान यह दृश्यमान सूर्यलोक वा सूर्यगोलक होकर भी उसके किंचित् अंश हमारे चक्षुओंमें आकर अधिष्ठातृदेवतारूप होकर रहते हैं जिससे हम देखते हैं । अंधेका अधिष्ठातृदेवता विद्युद्रूप है, इसी प्रकार अग्निदेवताका प्रधानस्थान अन्तरिक्ष, द्यु और जठर-यह तीन हैं तो भी अपने किंचित् अंशसे अपने कारणस्थान (हमारे मुखमें स्थित वाक्-इंद्रियमें स्थित होकर अधिष्ठातृदेवता होकर अवस्थान करते हैं. इसी प्रकार संपूर्ण देवताओंमें जानना. मंत्रब्राह्मणमें जहाँ (मृदब्रवीत्आपोऽब्रुवन्) ऐसा आताहै वा (तेहेमेप्राणाअहंश्रेयसेविवदमानब्रह्मजग्मुः कौषीतकी०) वे प्राणादिक अपनी श्रेष्ठतासंपादन करते प्रजापतिके समीप जाकर कहनेलगे ऐसे स्थानोंमें यही जानना कि, यह जडके संबोधन नहीं किन्तु उनके अधिष्ठातृदेवता हैं, सो प्रारंभमें भी कहचुकेहैं, पिछला आधा (मुखादिंद्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत) ऐसा है मुखसे अग्नि और ब्राह्मण दोनोंकी उत्पत्ति है इस कारण दोनोंमें आहुति होती है ॥ १२ ॥

है ॥ १२ ॥

मंत्रः ।

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥ पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२॥ऽअकल्पयन् ॥ १३ ॥

ॐ नाभ्या इत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ १३ ॥

भाष्यम्-(नाभ्याः) प्रजापतेर्नाभेः (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (आसीत्) उत्पन्नम् (शीर्ष्णः) शिरसः (द्यौः) द्युलोकः (समवर्तत) उत्पन्नः (पद्भ्याम्) पादाभ्यां (भूमिः (पृथिवी) श्रोत्रात् (कर्णात्) दिशः (दिश उत्पन्नाः) तथा (इत्थम्) लो-

कान् (अन्तरिक्षादीन्) अकल्पयन् (देवा उत्पादितवन्तः) देवमनुष्यादिनिखिलस्थावरजंगमादित्रैलोक्यमकल्पयन्नित्यर्थः ॥ १३ ॥

भाषार्थ-नाभिसे अंतरिक्ष हुआ, शिरसे स्वर्ग प्रकट हुआ, चरणोंसे पृथिवी, श्रोत्रोंसे संपूर्ण दिशाएं उत्पन्न हुईं, उसी प्रकार भूरादिलोकोंको पूर्वोक्त कल्पना करतेहुए, वा विराट्के देहसे कल्पना करतेहुए ॥ १३ ॥

विशेष-अन्तरिक्षदेवताका प्रधानद्वार अन्तरिक्षलोक है, तो भी उसका किंचित् अंश हम जीवगणोंके नाभिस्थानमें रहकर शरीरगोलकका केन्द्ररूप हुआ है, मस्तक द्युलोक इसके कहनेसे प्रकाशात्मक देवताका बोध जानना, मस्तिष्कमें वह प्रकाशात्मक देवता होकर अवस्थान करते हैं, यह देवता यदि क्षणमात्रको भी तिरोधान होजाय तो शरीरमें स्थित रक्तकणिका और धमनी सब अचल होजावें और रुधिरके जमनेसे तत्काल जीवनमूर्च्छा और अंधकारसे व्याप्त होजाय यदि यह द्युदेवता पुनर्वार आगमन न करे तो फिर जीवन नहीं होता, अर्थात् मृत्यु होजाती है. योगीजन चक्षु मूँदकर भ्रूमध्यमें इसी किरणका दर्शन करते हैं, वह किरण इस दिवदेव देवताके मस्तिष्कसे आई हुई प्रकाशमात्र है जिनके मस्तकमें यह क्षण-क्षणमें आविर्भाव और तिरोभाव होती है, वह पुरुष अस्थिरमति और संपूर्णकार्योंमें अस्थिर होताहै उन्माद इसका ही प्रधानकारण है। यह मस्तकका अधिष्ठातृदेवता है, प्रगट और तिरोहित होता है. चरणोंसे भूमि हुई भूमिको आधारशक्ति जानना, आधारशक्ति और भूमि एकही बात है, भूमिदेवता अपने कारण पादयुगलमें किंचित् अवस्थित हुई है इसीसे दोनों चरणोंमें सब शरीरके वहन करनेकी सामर्थ्य है, यदि भूमिदेवता चरणोंसे क्षणकालको भी तिरोहित होवे तो यह शरीर गिरजाय अतिशैशव और अतिवार्धक्य यह इन दोनों पादोंमें गूढभावसे अवस्थान करते हैं, श्रोत्रसे दश दिशाएँ हुईं, दिग्देवता अपने कारण श्रोत्रइन्द्रियमें कुछ अंशसे स्थित होकर अधिष्ठातृदेवतारूपसे विराजते हैं हम देखते हैं इसी दिशामें अपने कर्ण स्थापन करें सब ओर सुनेंगे इसका कारण क्या ? यह सब दिशाओंमें व्यापी दिग्देवताका अधिष्ठान मात्रही इसका कारण है ॥ १३ ॥

मन्त्रः ।

यत्पुरुषेणहविषादेवायज्ञमतन्वत ॥ वसन्तोऽस्यासीदाज्यंङ्ग्रीष्मऽइध्मःशरद्धविः ॥

ॐ यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । यज्ञो दे० । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्-(यत्) यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषूत्पन्नेषु सत्सु (देवाः) उत्तरसृष्टिसिद्ध्यर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन हविरन्तरासंभवात् पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य (पुरुषेण) पुरुषाख्येण (हविषा) हविर्भूतेन (यज्ञम्) मानसं यज्ञम् (अतन्वत)

अतनिषत, तदानीम् (वसन्तः) वसन्तर्तुः (अस्य) यज्ञस्य (आज्यम्) घृतम् (आसीत्) अभूत् (ग्रीष्मः) ग्रीष्मर्तुः (इध्मः) समिद्विशेषः आसीत् (शरत्) शरदृतुः (हविः) हविरासीत्। एवं पुरुषस्य हविःसामान्यरूपत्वेन संकल्पोऽनन्तरं वसन्तादीनामाज्यादि विशेषरूपत्वेन संकल्प इति ज्ञातव्यम् ॥ १४ ॥

भाषार्थ-जिस समय पूर्वोक्त क्रमसे देवशरीरोंके होनेपर देवताओंने उत्तरसृष्टिके सिद्ध करनेके निमित्त बाह्यद्रव्यके उत्पन्न न होनेके कारण पुरुषस्वरूपको ही मनसे हविद्वारा संकल्प कर उस पुरुषरूपहविद्वारा मानसयज्ञको विस्तार किया, उस समय वसन्त ऋतु इस यज्ञकी घृतरूप कल्पना हुई, ग्रीष्मऋतु समिध् और शरद् ऋतु हवि हुई. प्रथमपुरुषकी हवि सामान्यरूपसे संकल्प करके फिर वसन्तादिकी आज्यविशेषरूपसे कल्पना की है, यजुःमें कहिंकाव्यत्यय है, ऋक्‌में इसके उपरान्त "तं यज्ञम्" ९, फिर "तस्माद्यज्ञात्" ६, फिर "सप्तास्यासन्" हैं ॥ १४ ॥

मन्त्रः।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

ॐ सप्तास्यासन्नित्यस्य नारायण ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। यज्ञो देवता। वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्-(अस्य) सांकल्पिकस्य यज्ञस्य (सप्त) गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि (परिधयः) ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधयः उत्तरवेदिकास्त्रय आदित्यश्च सप्तमः परिधिः प्रतिनिधिः पुरुषस्य यज्ञस्य परिधयः भूमिवेष्टनानि सप्तसागरा आसन्निति वा (त्रिःसप्त) एकविंशतिः द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इति एते पदार्थाः सप्त छन्दांसि सप्त उपच्छन्दांसि सप्त व्याहृतयश्च वा। एतानि (समिधः कृताः) या दारुयुक्तेध्मत्वेन भाविताः (यत्) यदा (देवाः) प्रजापतिः प्राणेन्द्रियरूपाः (यज्ञम्) मानसं यज्ञं (तन्वानाः) कुर्वाणाः (पुरुषम्) विराट्पुरुषमेव (पशुम्) पशुत्वेन (अबध्नन्) भावितवन्तः ॥ १५ ॥

भाषार्थ-जिस समय पूर्वोक्तदेवताओंका अर्थात् प्रजापतिके प्राणइन्द्रियके अधिष्ठाताओंने मानसयज्ञको विस्तार करतेहुए विराट्पुरुषको पशुरूपसे भावित करके बांधा तब इस संकल्पित यज्ञकी सात गायत्री आदि छंद परिधी हुईं, ऐष्टिक आहवनीयकी उत्तरवेदीकी तीन; आदित्य सातवीं परिधी हुई, यह प्रतिनिधिरूप है (तथाच श्रुतिः "गुप्त्यैवा अभितः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद्गोप्तारं करोति। इति तत एते आदित्यसहिताः सप्त परिधयोऽत्र

सप्तच्छन्दोरूपाः ") इक्कीस समिधाओंकी अर्थात् बारह महीने पांच ऋतु तीन लोक और यह आदित्य यह इस यज्ञमें काष्ठरूपसे भावित कियेगये. अथवा सात क्षीरादि समुद्र यज्ञकी परिधी हुई। कारण कि-भरतखण्डमें यज्ञ होते हैं और गायत्रीआदि सात अतिजगतीआदि सात और कृत्यादिसात यह इक्कीस छन्द इसके समिधारूप हुए यही इस ब्रह्माण्डके और शरीरके आवरण हैं इन्हींसे स्थिति है॥ १५॥

मन्त्रः।

यज्ञेनं यज्ञमंयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्प्र-
थमान्यासन्॥ ते हुनाकम्महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ १६॥

ॐ यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषिः। ब्राह्म्युष्णिक् छं० यज्ञो देवता। वि० पू० ॥१६॥

भाष्यम्-(देवाः) प्रजापतिप्राणरूपाः सिद्धसंकल्पाः (यज्ञेन) यथोक्तेन यज्ञसाधनभूतेन संकल्पेन सामग्र्या वा (यज्ञम्) पुरुषं यज्ञस्वरूपं प्रजापतिं विष्णुं वेति। "यज्ञो वै विष्णुः" इति श्रुतेः। (अयजन्त) पूजितवन्तः (तानि) ते (धर्माणि) धर्माः (प्रथमानि) मुख्यानि (आसन्) अभूवन्। अन्यत्र तद्दर्शनमसंभावितमेवेत्यर्थः। (यत्र) यस्मिन् विराट्प्राप्तिरूपे नाके (पूर्वे) पूर्वे (साध्याः) साध्याद्यो देवाः (सन्ति) वर्तन्ते तम् (नाकम्) विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गं (ह) निश्चयेन (ते) (महिमानः) तदुपासकाः (सचन्ते) समवयन्ति प्राप्नुवन्ति। इति पुरुषसूक्तानुवाकः॥ १६॥

भाषार्थ-सिद्धसंकल्प देवता मानसयज्ञसे यज्ञस्वरूप प्रजापतिका पूजन करतेहुए, वे यज्ञपुरुष पूजनसंबंधि धर्म वा जगद्रूपविकारोंके धारण करनेवाले मुख्य हुए अर्थात् उसके फलके चिरन्तन धर्म प्रथम हुए। यहाँतक सृष्टिप्रतिपादक सूक्तभाग है। अगला उपासनारूप फलानुवादक भाग कहते हैं, जिस विराट्प्राप्तिरूप स्वर्गमें पुरातन विराट् उपाधिसाधक देवता स्थित रहते हैं. विराट्प्राप्तिरूप स्वर्गको ही वे उपासक महात्मा प्राप्त होते हैं, इससे सृष्टिका प्रवाह नित्य दिखाया। ("सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति)॥ १६॥

अथोत्तरनारायणम्।

मन्त्रः।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्म्मणः

समवर्त्तताग्रे ॥ तस्युत्वष्ट्टाविदधद्रूपमेति तन्मर्त्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

ॐ अद्भ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। आदित्यो दे०। सूर्योपस्थाने वि० ॥ १७ ॥

भाष्यम्–(पृथिव्यै) पृथिव्या अपि (च) (अद्भ्यः) जलात् (सम्भृतः) पुष्टः अत्र पृथिवीपदं पंचभूतोपलक्षणार्थं तेन पंचभूतोत्पत्तिपूर्वकाल एव सम्भृतः पुष्ट इत्यर्थः। (विश्वकर्मणः) विश्वं कर्म यस्य तस्य कालस्य (रसात्) प्रीतिर्यो रसः (अग्रे) प्रथमं (समवर्तत) समभवत्। यद्वा विश्वकर्मणो जगन्निर्माणेच्छाऽभूत्तदेव समवर्तत इत्यर्थः। भूतपंचकस्य कालस्य सर्वं प्रति कारणत्वात् पुरुषमेधयाजिनो लिंगशरीरे पंचभूतानि तुष्टानि कालश्च। ततस्तुष्टेभ्यः कश्चिद्रसविशेषफलरूप उत्तमजन्मप्रद उत्पन्नः वेत्यर्थः। (तस्य) रसस्य (रूपं) तद्रूपं (विदधत्) धारयन् (त्वष्टा) आदित्यः (एति) प्रत्यहमुदयं करोति। (अग्रे) प्रथमं (मर्त्यस्य) मनुष्यस्य सतस्तस्य पुरुषमेधयाजिनः (आजानम्) मुख्यम् (तत्) (देवत्वम्) सूर्यरूपेण–तस्मात्तस्यादित्यस्य तद्रूपं मण्डलाकारं मर्त्यस्य मनुष्याणां सृष्टितोऽपि अग्रे पूर्वं देवत्वं विदधत् धारयत एति वेत्यर्थः। द्विविधाः देवाः कर्मदेवा आजानदेवाश्च–उत्कृष्टेन कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजानदेवाः ॥ १७ ॥

भावार्थ–पृथिवीआदिसृष्टिके निमित्त अथवा पृथिवीसे और जलोंसे पृथिवीके ग्रहण करनेसे पंचभूतका ग्रहण है, अर्थात् पंचभूतोंसे जो रस पुष्ट हुआ, और जिसका विश्व कर्म है उस कालकी प्रीतिका रस सबसे प्रथम होताहुआ, पंचभूत और काल इन सबके प्रति कारण होनेसे पुरुषमेधयाजीके लिंगशरीरमें पांच भूत और काल तुष्ट होते हैं, उनके तुष्ट होनेसे कोई रस फलविशेष उत्तमजन्मका देनेवाला उत्पन्न हुआ। उस रसको रूप धारण करताहुआ आदित्य प्रतिदिन उदय करता है. प्रथम मनुष्यरूप उस पुरुषमेधयाजीके सूर्यरूपसे मुख्य उस देवत्वको प्राप्त करता है, दो प्रकारके देवता होते हैं–कर्मदेव और आजानदेव, कर्मसे देवत्वको प्राप्तहुए कर्मदेव, सृष्टिकी आदिमें उत्पन्नहुए आजानदेव होते हैं. कर्मदेवोंसे सौगुणा अधिक आनन्द आजानदेवताओंको होताहै ('ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दः' इति श्रुतेः।) [बृहदारण्यक ४। १। ३९।] पुरुषमेधयाजी पूर्वकल्पमें आदित्यरूपको प्राप्तहुआ स्तुति किया है ॥ १७ ॥

विशेष–पृथिवीआदि सृष्टिके निमित्त उसके द्वारा जलसे रस हुआ। वही सब जगत्का उपादानस्वरूप है, उससे ही यह समस्त जगत् जो आगे वर्त्तमान था उसकी सृष्टि हुई, तब इस जगत्के रूपविधानार्थ त्वष्टाकी सृष्टि हुई, उन्होंने इस मर्त्यभुवनमें कर्मदेवत्व प्रगट किया। मुक्तपक्षमें–पुरुषमेधयाजीके कर्मसे फलरूप रस प्रगट होताहै। वह कर्मफलका देनेवाला यह

सूर्य है, वह पुरुष सूर्यमें गमन कर आदित्यरूपको प्राप्त होजाताहै। और यही मुक्तिका मार्ग है सो आगे प्रगट करते हैं ॥ १७ ॥

मन्त्रः ।

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ॥ तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यः पन्थाविद्यतेयनाय ॥ १८ ॥

ॐ वेदाहमित्यस्य नारायण ऋषिः । निच्यृदार्षीत्रिष्टुप् छं० पुरुषो दे० । वि० पू० ॥ १८ ॥

भाष्यम्-(अहम्) (एतम्) (महान्तम्) सर्वोत्कृष्टम् (आदित्यवर्णम्) सूर्यसदृशम् उपमान्तराभावात् स्वोपमम् (तमसः) अंधकारस्य (परस्तात्) दूरतरम् तमोरहितमित्यर्थः । तमःशब्देनाविद्योच्यते (पुरुषम्) सूर्यमण्डलस्थं (वेद) जानामि (तम्) आदित्यम् (एव) (विदित्वा) ज्ञात्वा (मृत्युम्) मरणम् (अत्येति) अतिक्रामति परं ब्रह्म गच्छति (अयनाय) आश्रयाय (अन्यः) द्वितीयः (पन्था) मार्गः (न विद्यते) नास्ति । पुनरावृत्तये मोक्षाय अन्यः पन्था न विद्यते तथा चायमेव पुरुषो ध्यानगम्यो जातो मोक्षं ददातीति वाक्यार्थः । यथा आदित्यः स्वप्रकाशकः परानपि प्रकाशयति तथाऽयमपि स्वप्रकाशब्रह्मरूपी जगदपि प्रकाशयतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

भाषार्थ-मैं इस सबसे उत्कृष्ट आदित्यरूप और उपमा न होनेसे अपनी ही समान अंधकारसे परे अंधकाररूपी अविद्यासे दूर पुरुषको जानताहूँ उसही आदित्यको जानकर मृत्युको आक्रमण करताहै, अर्थात् परमब्रह्मको प्राप्त होताहै, आश्रयके निमित्त दूसरा मार्ग नहीं है, सूर्यमण्डलके अन्तमें आत्मरूप पुरुषको ही जानकर मुक्ति होतीहै ॥ १८ ॥

विशेष-उस कारणरूप सबसे उत्कृष्ट जगदीश्वर आदित्यवर्ण विद्याप्रकाशक परमेश्वरके ज्ञानसे ही मनुष्यकी मुक्ति होतीहै, यही देवयान मार्ग कहाताहै, इसके सिवाय मुक्तिका दूसरा मार्ग नहीं है, इसीसे आत्मा तदाकार होताहै उस समय जो ईश्वरकी महिमा है उसको यह जानता है ॥ १८ ॥

मन्त्रः ।

प्रजापतिश्चरतिगर्ब्भेऽअन्तरजायमानोबहुधाविजायते ॥ तस्ययोनिम्परि-

श्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १९ ॥

ॐ प्रजापतिरित्यस्य नारायण ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ १९ ॥

भाष्यम्-(प्रजापतिः) प्रजानां पतिः (अन्तः) अन्तर्हृदि स्थितः सन् (गर्भे) मध्ये (चरति) प्रविशति प्राणिनां मध्ये जीवात्मकरूपतया वसतीत्यर्थः । (अजायमानः) नित्यत्वादनुत्पत्तिधर्मोऽपि (बहुधा) बहुप्रकारेण कार्यकारणरूपेण (जायते) स्थावरजङ्गमात्मकदेहेषु जन्म लभते, यद्वाऽजायमानोऽपि गर्भे बहुधा जायते रामादिशरीरेणेत्यर्थः । मायया प्रपञ्चरूपेणोत्पद्यत इति वा । (धीराः) ब्रह्मविदः (तस्य) प्रजापतेः (योनिं) स्थानं स्वरूपम् (परिपश्यन्ति) अहं ब्रह्मास्मीति जानन्ति ध्यानेन सम्यगुपलक्षयन्त इत्यर्थः । (ह) (तस्मिन्) तस्मिन्नेव ब्रह्मणि (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) भूतजातानि (तस्थुः) स्थितानि स्वर्गमृत्युपातालादिस्थितानि सर्वं तदात्मकमेवेत्यर्थः ॥ १९ ॥

भाषार्थ-सर्वात्मा प्रजापति अन्तर्हृदयमें स्थित हुआ प्रत्येक गर्भके मध्यमें प्रविष्ट होताहै। उत्पन्न न होनेवाला और नित्य होकर भी अनेक प्रकार कार्यकारणरूपसे उत्पन्न होताहै, अर्थात् मायाद्वारा प्रपंचरूपसे रामादिशरीर धर उत्पन्न होताहै, ब्रह्मके ज्ञाता उस प्रजापतिके स्थान-स्वरूपको देखतेहैं, (अहं ब्रह्मास्मीति) इस प्रकारसे जानते हैं. संपूर्ण भूतसमूह प्राणी उसी कारणात्मा ब्रह्ममें स्थित हैं अर्थात् संपूर्ण जगत् तदात्मक है, आशय यह कि सर्वत्र परमात्मा स्थित है, वही सबमें व्याप्त होकर अजन्मा होकर भी अनेकरूप धारण करता है ॥ १९ ॥

मन्त्रः ।

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानाम्पुरोहितः ॥ पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

ॐ यो देवेभ्य इत्यस्य नारायण ऋ० । आर्ष्यनुष्टुप् छं० पुरुषो दे० । वि० पू० ॥ २० ॥

भाष्यम्-(यः) प्रजापतिरादित्यरूपः (देवेभ्यः) देवानां प्रयोजनाय (आतपति) आ समन्ताद्भावेन द्योतते (यः) (देवानाम्) अमराणाम् (पुरोहितः)

कार्येष्वग्रे नीतः देवानां हविर्दानाय पूर्वमग्निरूपेणाधीयत इत्यभिप्रायः । (यः) (देवेभ्यः) देवेभ्यः सकाशात् (पूर्वः) (जातः) उत्पन्नः तस्मै (रुचाय) रोचमानाय (ब्राह्मये) ब्रह्मभूताय ब्रह्मण अपत्यं ब्राह्मिः तस्मै, ब्रह्मावयवभूताय वेत्यर्थः । (नमः) नमोऽस्तु ॥२०॥

भाषार्थ-जो आदित्यरूप प्रजापति देवताओंके निमित्त सब ओरसे प्रकाशित होताहै, जो देवताओंका सब कार्योंमें अग्रणी है, वा प्रथम हितकर तथा पूज्य है, जो सब देवताओंसे प्रथम प्रगट हुआहै उस दीप्यमान ब्रह्मके अवयवरूपके निमित्त नमस्कार है ॥ २० ॥

विशेष-जो सूर्यरूपसे सब देवताओंको तपाते, जो अग्निरूपसे देवताओंके पुरोहित, जो कारणजलसे सबसे पूर्व प्रगट हुए हैं उन ब्राह्मीकान्तिमान्के निमित्त नमस्कार है ॥ २० ॥

मन्त्रः ।

रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवाऽअग्ग्रेतदब्रुवन् ॥ यस्त्वैवम्ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥ २१ ॥

ॐ रुचमित्यस्य नारायण ऋ० । आर्ष्यनुष्टुप् छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्-(देवाः) ब्रह्मादयः यद्वा दीप्यमानाः प्राणाः (रुचम्) शोभनम् (ब्राह्मम्) ब्रह्मणोऽपत्यमादित्यम् (जनयन्तः) उत्पादयन्तः (अग्रे) प्रथमम् (तत्) (अब्रुवन्) अयमेवास्माकं मुख्य इत्युक्तवन्तः । किं च हे पुरुषोत्तम (यः) (ब्राह्मणः) ब्राह्मणः (त्वा)·त्वाम् (एवम्) उक्तविधिना (विद्यात्) जानीयात् (तस्य) आदित्योपासकस्य ब्राह्मणस्य (देवाः) देवगणाः (वशे) इच्छायाम् (असन्) भवन्ति । आदित्योपासको जगत्पूज्यो भवति तथा च सहस्रशीर्षेत्यादिग्रन्थतोऽर्थतश्चाधीत्य यो ब्राह्मणः पुरुषोत्तमं जानाति ब्रह्मादयः देवास्तस्याभिलषितान्सम्पादयन्तीति वाक्यार्थः ॥ २१ ॥

भाषार्थ-दीप्तिमान् इन्द्रियोंके देवता शोभन ब्रह्म ज्योतिरूप आदित्यको प्रगट करतेहुए प्रथम वह वाणी बोलतेहुए हे आदित्य ! जो ब्राह्मण तुमको उक्त प्रकारसे प्रगट हुआ अजरामर जानै उस आदित्यउपासनावाले ब्राह्मणके देवता वशमें होते हैं ॥ २१ ॥

मन्त्रः ।

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इ-

इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ॥ २२ ॥

इति संहितायां रुद्रपाठे द्वितीयोऽध्यायः २॥

ॐ श्रीश्चत इत्यस्य नारायण ऋ० । निच्यृदार्षीत्रिष्टुप् छं० । पुरुषो देवता । वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्-हे देव पुरुषोत्तम (श्रीः) श्रीयतेऽनया श्रीः सम्पत्तिः (च) (लक्ष्मीः) सौन्दर्यम् (ते) तव (पत्न्यौ) जायास्थानीये (' च) (अहोरात्रे) अहोरात्रे (पार्श्वे) पार्श्वस्थानीये । अहः शब्दः परब्रह्मपरः तस्य विद्यात्मकत्वेन प्रकाशरूपत्वात् रात्रिशब्दः संसारपरः प्रकृतिपरः तस्याविद्यात्मकत्वेन प्रकाशरूपत्वात् एतेन धर्मार्थकामात्मकः संसारः मोक्षश्च श्रीपरमेश्वरपार्श्वेऽद्वयमित्युक्तं भवति । (नक्षत्राणि) गगनगास्तारा: (रूपम्) तव मूर्तिः (अश्विनौ) द्यावापृथिव्यौ (व्यात्तम्) विकासितमुखस्थानीये विवृतं मुखमित्यर्थः । (इष्णन्) कर्मफलमिच्छन् सन् (इषाण) गच्छ अनुगृहाण (अमुम्) परलोकम् (मे) (इषाण) मम परलोकः समीचीनोऽस्तु मे इमं लोकं भार्यापुत्रजनादिकमिषाण न केवलममुं किन्तु भूरादिसप्तलोकम् इषाणायं वाक्यार्थः। (सर्वम्) पशुपुत्रादिधनयुक्तमिह लोकं स्वर्गमोक्षादिकमिच्छितवाञ्छामात्रेणैव सर्वं (मे) महाम् (इषाण) इच्छेत्यर्थः । सर्वात्मकोऽहं भवेयमितीच्छेत्यर्थः ॥ २२ ॥

भाषार्थ-हे स्वप्रकाशस्वरूप ! श्री जिसकेद्वारा संपूर्णजन आश्रणीय होते हैं, और. जिसके द्वारा देखाजाताहै सौंदर्य रूप लक्ष्मी आपकी स्त्रीस्थानिय है और दिनरात पार्श्वस्थानीय हैं आकाशमें स्थित नक्षत्र आपका रूप हैं कारण कि तुम्हारेही तेजसे प्रकाशित हैं द्यावापृथिवी तुम्हारे मुखस्थानमें व्याप्त हैं ("अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ इमे हीद ७ सर्वमश्नुवाताम् " इति श्रुतेः ।) कर्मफलकी इच्छा करते इच्छा करो, परलोककी मेरे निमित्त इच्छा करो अर्थात् मेरे निमित्त परलोक समीचीन हो ऐसी अमोघ इच्छा हो सवलोकात्मक मैं होजाऊं. अर्थात् मुक्त होजाऊँ ऐसी मेरे निमित्त इच्छा करो ॥ २२ ॥

सरलार्थ-मनुष्योंको इस प्रकार ब्रह्मबोध लाभ करना चाहिये कि हे देव ! श्री और लक्ष्मी शोभा वा कान्ति और संपत्ति यह तुम्हारी पत्नीरूप हैं, दिनरात तुम्हारे दोनों पार्श्वधारी, तुम्हारे रूपसे नक्षत्र रूपवान् हैं, द्यावापृथिवी तुम्हारे शरीरके रक्षकरूपसे सावधानतासे तुमको दृष्टिपूर्वक व्याप्त करके स्थित हैं, यदि तुम इच्छा करो तो यह लोक तो तुम्हारी इच्छानुगत है सबलोकही तुम्हारी इच्छानुगत हैं, मुझ उपासकको ब्रह्मप्राप्ति हो, मैं सर्वत्र आपको अनुभव करूँ, यह आदित्यमें ब्रह्मउपासना है ॥ २२ ॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

आशुःशिशानोव्वृषभोनभीमोघनाघनःक्षोभणश्चर्षणीनाम् ॥ सङ्क्रन्दनोनिमिषऽएकवीरःशतꣳसेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

ॐ आशुरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः आर्षी त्रिष्टुप्० । इन्द्रो देवता जपे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-(आशुः) शीघ्रकारी व्यापको वा (शिशानः) शातनकर्ता (वृषभः) वृषभः (न) इव (भीमः) भयानकः (घनाघनः) घातकः शत्रूणां हन्ता (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (क्षोभणः) सञ्चालकः (संक्रन्दनः) सम्यक् क्रन्दा वा प्राणिनामाकर्षण प्रहारेण वा (अनिमिषः) अप्रमादी चक्षुर्निमेषरहितः सर्वदा स्वयज्ञगमनयुद्धादिकार्येष्वनलस इत्यर्थः । (एकवीरः) विक्रान्तः असाहाय्येन कार्यक्षम इत्यर्थः । (इन्द्रः) इन्द्रो देवता (शतं सेनाः) बह्वीः सेनाः (साकम्) एकदैव (अजयत्) जितवान् [यजु० १७ । ३३] ॥ १ ॥

भावार्थ-शीघ्रगामी, वज्रकी तीक्ष्णकारी वर्षणशीलकी उपमावाला, भयकारी, शत्रुओंका अतिशयघातक, वा वृष्टि करनेमें मेघरूप, मनुष्योंके क्षोभका हेतु, बारंबार गर्जन करनेवाला, अथवा शत्रुओंका आह्वान करनेवाला, देवता होनेसे पलक न लगानेवाला अत्यन्तसावधान वा निरंतर जाग्रत् वा ऊपर २ विद्युत्प्रकाशयुक्त एक अद्वितीय वीर इंद्रनामसे प्रसिद्धने साथही एक सौ २ शत्रुसेनाको जय कियाहै, इस मंत्रके विशेषण अवतारोंमें भी घटते हैं तथा इस मन्त्रमें सेनानायकके गुणोंकाभी वर्णन है कि, वह इस प्रकारका होना चाहिये ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनायुत्कारेण दुश्च्यवनेनधृष्णुना ॥ तदिन्द्रेणजयतत त्सहध्वंयुधोनरऽइषुहस्तेनवृष्णा ॥ २ ॥

ॐ सङ्क्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । विराड्ब्राह्म्यनुष्टुप्० इन्द्रो दे० वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्-(युधः) हे योद्धारः (नरः) हे मनुष्याः (धृष्णुना) प्रसहनशीलेन (संक्रन्दनेन) शब्दकारिणा (युत्कारेण) युद्धकारिणा (अनिमिषेण) निमेषरहितेन एकचित्तेन वा (इषुहस्तेन) बाणपाणिना (जिष्णुना) जयशीलेन (दुश्च्यवनेन) अप्रच्युतस्वभावेन (वृष्णा) वर्षणशीलेन (इन्द्रेण) इन्द्रेण (तत्) तद्युद्धं (जयत) जयत (तत्) शत्रुबलम् (सहध्वम्) अभिभवत ॥ २ ॥

भाषार्थ-हे युद्ध करनेवाले मनुष्यो! प्रगल्भ भयरहित शब्द करनेवाले, बहुत युद्ध करनेवाले, एकचित्त, बाण हाथमें धारण किये, जयशील, अजय्य, कामनाओंके वर्षानेवाले, इन्द्रके प्रभावसे उस शत्रुसेनाका जय करो और उस शत्रुसेनाको वशीकरके विनाश करो। सेनानायकोंका यह मंत्र पढकर इन्द्रकी सहायतासे युक्त हो युद्ध करना चाहिये [यजु० १७। ३४] ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

सऽइषु॑हस्तैः॒ सनि॑षुङ्गिभिर्व॒शी सꣳस्र॑ष्टा॒ स युध॒ऽइन्द्रो॑ ग॒णेन॑ ॥ स॒ꣳसृ॒ष्ट॒जित्सो॑म॒पा बा॑हुश॒र्द्ध्युग्रध॑न्वा॒ प्रति॑हिताभि॒रस्ता॑ ॥ ३ ॥

ॐ सऽइषुहस्तैरित्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । आर्षीत्रिष्टुप्० । इन्द्रो देवता वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(सः) (वशी) जितेन्द्रियः कान्तो वा (इषुहस्तैः) बाणहस्तैः (निषङ्गिभिः) निषङ्गः खड्गः तद्वद्भिः भटैः (संस्रष्टा) एकीभवनशीलः (सः) (गणेन) शत्रुसंघेन) युधः युद्धकर्ता (स इन्द्रः) इन्द्रः (संसृष्टजित्) संसृष्टान् शत्रून् जयति (सोमपाः) सोमस्य पाता (बाहुशर्द्धी) बाहुबलोपेतः (उग्रधन्वा) उद्यतधन्वा (प्रतिहिताभिः) प्रेरिताभिरिषुभिः (अस्ता) मारयिता । ईदृशेनेन्द्रेण जयेति सम्बन्धः । [यजु० १७। ३५] ॥ ३ ॥

भाषार्थ-वह जितेन्द्रिय वा शत्रुओंको वश करनेवाला अथवा मनोहर सर्वजनोंका प्रिय, अथवा स्वतंत्र वा शत्रुओंका ऐश्वर्य ग्रहण करनेवाला बाण हाथमें लिये धनुषधारियोंसे युद्धके निमित्त संसर्ग करनेवाला, वह शत्रु समूहोंसे युद्ध करनेवाला है, वह इंद्र युद्धके निमित्त संगतहुए शत्रुओंका जीतनेवाला, यजमानोंके यज्ञमें सोमपान करनेवाला, बाहुओंके बलसे युक्त, उत्कृष्टधनुषवाला, अपने धनुषसे प्रेरित बाणोंसे शत्रुओंपर चलताहै वह इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

बृह॑स्पते॒ परि॑दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॒२ ॥ ऽ

अपबाधमानः ॥ प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥

ॐ बृहस्पत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप् छं० । बृहस्पतिर्देवता । विं० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्–(बृहस्पते) बृहतां पते पालयितः देव (रक्षोहा) रक्षसां हन्ता (रथेन) (परिदीयाः) परिगच्छ (अमित्रान्) शत्रून् (अपबाधमानः) सर्वतो नाशयन् (सेनाः) शत्रुसम्बधिनीः सेनाः (प्रभञ्जन्) प्रकर्षेण नाशयन् (युधा) युद्धेन (प्रमृणः) प्रमर्दकान् (जयन्) जयन् (अस्माकम्) (रथानाम्) रथानाम् (अविता) गोप्ता (एधि) भव [यजु० १७ । ३६] ॥ ४ ॥

भावार्थ–वाणीके पति व्याकरणकर्ता होनेसे इन्द्रका नाम बृहस्पति है, अथवा उनके पुरोहित बृहस्पतिका संबोधन है, हे बृहस्पते ! तुम राक्षसों वा विघ्नोंके नष्ट करनेवाले हो, रथके द्वारा सब ओर गमन करते शत्रुओंको पीडा देतेहुए शत्रुओंकी सेनाको अतिशय पीडा करतेहुए युद्धसे हिंसा कारियोंको जय करतेहुए हमारे रथोंके रक्षक हो ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

बलविज्ञायस्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमानऽउग्रः ॥ अभिवीरोऽअभिसत्त्वा सहोजाजैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥

ॐ बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । इन्द्रो दे० वि० पू० ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(इन्द्र) हे इन्द्र त्वम् (बलविज्ञायः) सर्वभूतबलं विजानातीति बलविज्ञायः (स्थविरः) सर्वानुशासकः सर्वमान्यश्चिरन्तनो वा (प्रवीरः) प्रकृष्टो वीरः (सहस्वान्) बलवान् (वाजी), वाजमान् वाजमन्नम् (उग्रः) उद्गूर्णबलः (अभिवीरः) वीरमभिलक्षीकृत्य गच्छतीत्यभिवीरः अभिगता वीरा वीर्यवन्तोऽनुचरा यस्य सः तथोक्तः । (अभिसत्त्वा) सत्त्वमभितिष्ठति सः

(सहोजाः) बलाज्जातः (गोवित्) स्तुतिज्ञाता (सहमानः) शत्रूणामभिभविता (जैत्रम्) जयशीलम् (रथम्) रथम् (आतिष्ठ) अस्य साहाय्यार्थमारोढु-मर्हसि [यजु० १७ । ३७] ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे इन्द्र ! तुम दूसरोंका बल जाननेवाले, पुरातन, सबके अनुशासन करनेवाले, अतिशय शूर, महाबलिष्ठ, अन्नवान्, युद्धमें क्रूर, सब ओर वीरोंसे युक्त, सब ओर परिचारकोंसे युक्त, बलसे ही उत्पन्न, स्तुतिको जाननेवाले, शत्रुओंके तिरस्कारकर्ता हो, अपने जयशील रथमें आरोहण करो ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

गोत्रभिदं॑ गोविदं॒ वज्र॑बाहुं॒ जय॑न्त॒मज्म॑ प्रमृ॒णन्त॒मोज॑सा ॥ इ॒मᳪं स॑जाता॒ऽअनु॑ वीरयध्व॒मिन्द्रᳪं॑ सखायो॒ऽअनु॒ सᳪं र॑भध्वम् ६

ॐ गोत्रभिदमित्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । भूरिगार्षी त्रिष्टुप् छं० । इन्द्रो देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्—(सजाताः) सहोत्पन्ना योद्धारः (सखायः) परस्परं सखिभूता यूयं (इमम्) (गोत्रभिदम्) वृष्ट्यर्थं मेघं भिनत्ति तं पर्वतानां भेत्तारं वा (गोविदम्) पण्डितम् (वज्रबाहुम्) वज्रहस्तम् (अजम जयन्तम्) संग्रामं जयन्तम् " अज्मेति युद्धनाम् [निघं० २।१७।४३] " (ओजसा) बलेन (प्रमृणन्तम्) मर्दयन्तम् (इन्द्रम्) देवेन्द्रम् (अनुवीरयध्वम्) वीरकर्म युद्धं कुरुध्वम् (अनुसंरभध्वम्) अनुगम्य संरंभं कुरुत [यजु० १७ । ३८] ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे समानजन्मवाले देवताओ ! इस असुरलोकके नाशक वा मेघके भेदन करनेवाले देववाणीके ज्ञाता, पंडित, हाथमें वज्र धारण करनेवाले, संग्रामके जीतनेवाले बलसे शत्रुओंको मारनेवाले, इन्द्रको वीरकर्मका उत्साह दिवाओ, और इस वेग करनेवालेके उपरान्त तुम वेग करो ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

अ॒भि गो॒त्राणि॒ सह॑सा॒ गाह॑मानोऽद॒यो वी॒रः श॒तम॑न्यु॒रिन्द्र॑ः ॥ दु॒श्च्य॒व॒नः पृ॑तना॒षाड॑यु॒द्ध्यो॒ऽस्माक॒ᳪं सेना॑ऽअवतु॒ प्र यु॒त्सु ॥ ७ ॥

ॐ अभिगोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् छं० । इन्द्रो देवता । वि० पू ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(अदयः) निस्त्रासः निर्दयो वा (वीरः) विक्रान्तः (शतमन्युः) बहुयज्ञः बहुक्रोधो वा (दुश्च्यवनः) अन्यैरचाल्यः (पृतनाषाट्) शत्रुसेनानामभिभविता (अयुध्यः) सम्प्रहर्तुमशक्यः (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्तदेवः (युत्सु) संग्रामेषु (गोत्राणि) अभ्राणि असुरकुलानि वा (सहसा) बलेन (अभिगाहमानः) प्रविशन् (अस्माकम्) (सेनाः) चमूः (प्रावतु) रक्षतु [यजु० १७ । ३९] ॥ ७ ॥

भाषार्थ-शत्रुओंपर दयारहित, विक्रान्त, अनेक प्रकारके क्रोधयुक्त, वा, शतयज्ञकर्ता, जिसको कोई च्यावित न करसके, अजेय संग्राममें सेनाको सहकर तिरस्कार करनेवाला, जिसके संग कोई युद्ध नहीं करसकता, सो इन्द्र युद्धोंमें असुरकुलोंको वा मेघवृन्दोंको एकसाथही विलोडित करताहुआ हमारी सेनाकी रक्षा करै ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

इन्द्रऽआसान्नेताबृहस्पतिर्दक्षिणायज्ञः पुरऽएतुसोमः ॥ देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीनाम्मरुतोयन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥

ॐ इन्द्र इत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । ब्राह्म्युष्णिक् छं० । इन्द्रो देवता वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्-(आसाम्) अस्मत्सहायार्थमागतानाम् (देवसेनानाम्) व्यूहरचनानाम् (इन्द्रः) देवेन्द्रः (नेता) नायकः अस्तु (बृहस्पतिः) बृहस्पतिः (पुरः) पुरस्तात् (एतु) आगच्छतु (दक्षिणा) दक्षिणस्यां दिशि (यज्ञः) यज्ञः (सोमः) सोमः (पुर एतु) अग्रे आगच्छतु यद्वा दक्षिणायज्ञः सोमः पुर एतु सेनानाम् । किम्भूतानाम् (अभिभञ्जतीनाम्)शत्रून् मर्दयन्तीनाम् (जयन्तीनाम्) विजयमानानाम् तासाम् (मरुत) मरुद्गणः (अग्रम्) सेनाग्रभागम् (यन्तु) गच्छतु [यजु०१७।४०]॥ ८ ॥

भाषार्थ-बृहस्पति, इन्द्र, इन शत्रुओंको मर्दन करनेवाली विजयशीलदेवसेनाओंके शिक्षक वा पालक हैं, यज्ञपुरुष विष्णु वा यज्ञ सोमदक्षिणा आगे गमन करैं, गणदेवता सेनाके अग्रभागमें गमन करैं । अथवा विष्णु दक्षिणओरसे रक्षाको गमन करैं, वा यज्ञ सोम दक्षिणाका फल जयको प्राप्त करैं, यही प्रकार सेना चलानेका है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ऽआदि॒त्याना॑म्म॒रुता॒ᳯ शर्द्ध॑ऽउ॒ग्रम् ॥ म॒हाम॑नसाम्भुवनच्य॒वाना॒ङ्घोषो॑ दे॒वाना॒ञ्जय॑ता॒मुद॑स्थात् ॥ ९ ॥

ॐ इन्द्रस्येत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । इन्द्रादयो देवताः । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(वृष्णः) वर्षतुः (इन्द्रस्य) देवेन्द्रस्य (राज्ञः) (वरुणस्य) वरुणदेवस्य (आदित्यानाम्) आदित्यसंज्ञकानाम् (मरुताम्) मरुद्गणानाम् (शर्द्धः) हस्त्यश्वपादान्तलक्षणं बलम् (उग्रम्) उद्गीर्णायुधं यथा स्यात्तथा उद्भूत (जयताम्) जयशालिनाम् । (महामनसाम्) उत्कृष्टचित्तानाम् (भुवनच्यवानाम्) भुवनच्यवनसमर्थानाम् (देवानाम्) देवतानाम् (घोषः) जितंजितमिति शब्दः (उदस्थात्) उत्तिष्ठति [यजु० १७ । ४१] ॥ ९ ॥

भाषार्थ-महामन अर्थात् युद्धमें स्थिरचित्त, लोकनाशकी सामर्थ्यवाले, जयशील देवता बारह आदित्य मरुद्गणों और कामनाकी वर्षा करनेवाले इन्द्र और राजा वरुणका उत्कृष्ट बल अर्थात् गज, तुरंग, रथ, पैदलोंकी सेनाका देवबलकी जय देवबलकी जय यह शब्द सम्यक्प्रकारसे हुआ, अर्थात् देवताओंकी बलप्रकाशक उग्रवज्रध्वनि सर्वदा समुत्थित होतीहै। सेनानायकोंको इन देवताओंका स्मरण कर जयशब्दपूर्वक सेना चलानी चाहिये ॥ ९ ॥

मन्त्रः ।

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नाम्मा॒म॒का॒नाम्मनां॑ᳯसि ॥ उद्वृ॑त्रहन्वा॒जिनां॒ वाजि॑नान्यु॒द्रथा॑नाञ्ज॒य॑तां यन्तु॒ घोषाः॑ ॥ १० ॥

ॐ उद्धर्षयेत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । इन्द्रो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्-(भगवन्) हे इन्द्र (आयुधानि) अस्मदीयानि शस्त्राणि (उद्धर्षय) उद्गतहर्षाणि कुरु प्रहरणेषूद्युक्तानि भवन्त्वित्यर्थः । (मामकानाम्) अस्मदीयानाम्

(सत्वानाम्) सैनिकानाम् (मनाᳫँसि) चेतांसि (उत्) उद्धर्षय (वृत्रहन्) हे देवेन्द्र (वाजिनाम्) अश्वानाम् (वाजिनानि) बलानि (उत्) उद्धर्षय तथा (जयताम्) जयशालिनाम् (रथानाम्) (घोषाः) शब्दाः (उद्यन्तु) उद्गच्छन्तु [यजु० १७ । ४२] ॥ १० ॥

भावार्थ-हे इन्द्र ! अपने आयुधोंको भलीप्रकार तीक्ष्णतापूर्वक हर्षित करो, हमारे जीवोंके वीरोंके मन हर्षित करो, घोड़ोंके शीघ्रगमनको उत्कृष्टतायुक्त करो, हे इन्द्र ! जयशील रथोंके शब्द फैलें अर्थात् विजयी रथोंकी हर्षध्वनि प्रकाशित हो ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ॥ अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ २ ॥ उ देवा अवता हवेषु ॥ ११ ॥

ॐ अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । इन्द्रादयो देवताः । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-(अस्माकम्) अस्माकं सम्बन्धिष्वेव (समृतेषु) परसेनां सम्प्राप्तेषु (ध्वजेषु) ध्वजवत्सु सैनिकेषु (इन्द्रः) इन्द्रः अविता भवतु (अस्माकम्) अस्माकम् (या इषवः) ये बाणाः सन्ति (ताः) ता एव (जयन्तु) जयशीला भवन्तु । तथा (अस्माकम्) (वीराः) भटाः (उत्तरे) उपरि (भवन्तु) विजयिनो भवन्तु किञ्च (देवाः) हे देवाः (हवेषु) संग्रामेषु (अस्मान्) (उ) निश्चयेन (अवत) रक्षत । [यजु० १७ । ४३] ॥ ११ ॥

भावार्थ-ध्वजाओंके मिलनेमें अर्थात् जिस समय हमारी रणपताका शत्रुओंकी रणपताकासे सम्मिलित हो, उस समय इन्द्र हमारी रक्षा करें, और हमारे जो बाण हैं वे प्रयोग करनेमें शत्रु-सेनाको ताडन करके जय प्राप्त करें, हमारे शूर शत्रुके योधाओंसे उत्कृष्ट हों, और देवता संग्राममेंभी हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

अमीषाञ्चित्तम्प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ॥ अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥

ॐ अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । इन्द्रसेना देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्-(अप्वे) हे पापाभिमानिनि देवते त्वम् (अमीषाम्) योद्धृणां शत्रूणाम् (चित्तं) मनांसि (प्रतिलोभयन्ती) विमोहयन्ती सती (अङ्गानि) शिरआदिकान् (गृहाण) स्वीकुरु । ततः (परेहि) परागच्छ (अभिप्रेहि) अभिगच्छ तेषां समीपं गत्वा च (हत्सु) हृदयेषु (शोकैः) दुःखैः (निर्दह) नितरां भस्मीकुरु (अमित्राः) अस्मच्छत्रवः (अन्धेन तमसा) अज्ञानलक्षणेन (सचन्ताम्) सेवन्ताम् ॥ [यजु० १७ । ४४] ॥ १२ ॥

भावार्थ-हे शत्रुओंके प्राणोंको कष्ट देनेवाली व्याधी ! इन शत्रुओंके चित्तोंको मोहित करती हुई शत्रुओंके शरीरोंको ग्रहण करतीहुई दूर चलीजा, सब ओरसे दूसरे शत्रुओंको ग्रहण करके चल उनके हृदयोंको धन पुत्र नाश आदिके निमित्तसे दग्ध करो, हमारे शत्रु गाढ अहंकारसे संगतिको प्राप्त हों ॥ १२ ॥

विशेष-इन बारह मंत्रोंमें परमात्माने यह उपदेश कियाहै कि सेना सेनापति शूरवीर इस प्रकारके गुणयुक्त एकचित्त परस्पर सहायकारी होने चाहिये और इन्द्ररूप परमात्माकी प्रार्थना कर शत्रुओंपर चढाई करनेसे धर्मसे विजय प्राप्त होगी यह विचारे तथा सब देवताओंकी तृप्ति साधन कर विजयको गमन करे अध्यात्मपक्षमें-काम, क्रोध, लोभ और मोह ही शत्रु हैं इन्हीका जय करना है । अथवा व्याधिकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ १२ ॥

मन्त्रः ।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते ॥ गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥ १३ ॥

ॐ अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । इषुर्देवता । इषुप्रयोगे विनियोगः ॥ १३ ॥

भाष्यम्-(ब्रह्मसंशिते) मंत्रेण तीक्ष्णीकृते (शरव्ये) हिंसाकुशले इषो त्वम् (अवसृष्टा) क्षिप्ता सती (परापत) इतो देशात् नियत (गच्छ) गत्वा च (अमित्रान्) शत्रून् (प्रपद्यस्व) प्राप्नुहि (अमीषाम्) शत्रूणां मध्ये (कञ्चन) किंचिदपि (मा उच्छिषः) अवशिष्टं मा कुरु । शत्रूनुत्कृत्तमूलान् कुर्वित्यर्थः । [यजु० १७ । ४५] ॥ १३ ॥

भावार्थ-ब्रह्ममंत्रसे तीक्ष्ण किये हुए हे बाणरूप ब्रह्मास्त्र ! तुम हमसे छोडे हुए एक साथ शत्रुसेनापर गिरो, गिरकर शत्रुओंको ग्रास करो और शत्रुओंके शरीरमें प्रवेश करके इनमें किसीको भी मत छोडो ॥ १३ ॥

मन्त्रः ।

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ॥ उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ १४ ॥

ॐ प्रेत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । योधा देवता । वीरोत्तेजने विनियोगः ॥ १४ ॥

भाष्यम्—(नरः) हे मनुष्याः नेतारः संग्रामस्य निर्वोढारो योद्धारः (प्रेत) प्रकर्षेण गच्छत गत्वा च (जयत) प्रतिभटान् जयत (इन्द्रः) इन्द्रः (वः) युष्माकम् (शर्म) कल्याणम् (यच्छतु) ददातु, किंच (वः) भवताम् (बाहवः) भुजाः (उग्राः) उद्गूर्णबलाः (सन्तु) भवन्तु । तथा (अनाधृष्याः) अन्यैरनभिभाव्याः (यथा) यथा यूयम् (असथ) भविष्यथ तथा वो बाहवः उग्राः सन्तु [यजु० १७ । ४६] ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे हमारे योधामनुष्यों ! शत्रुओंकी सेनापर शीघ्रतासे जाओ, और विजय प्राप्त करो अवश्य जय होगी, इन्द्र तुमको जयसे प्राप्त हुए सुखको प्रदान करैं, तुम्हारी भुजायें उद्गूर्णायुधवाली हृष्ट पुष्ट हों, जिससे तुम किसीसे भी तिरस्कार न पानेवाले हो ॥ १४ ॥

मन्त्रः ।

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति नऽओजसा स्पर्द्धमाना ॥ तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥ १५ ॥

ॐ असौ इत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् छं० । मरुतो देवता सेनोत्तेजने विनियोगः ॥ १५ ॥

भाष्यम्—(मरुतः) हे मरुतः (असौ या सेना वाहिनी) (नः) अस्मान् (ओजसा) बलेन (स्पर्द्धमाना) स्पृहायुक्ता (परेषां) शत्रूणां (अभ्येति) आभिमुखमेति (ताम्) सेनाम् (अपव्रतेन) अपगतकर्मणा "व्रतमिति कर्मनाम" [निघं० २ । १ । ७) (तमसा) अंधकारेण तथा (गूहत) व्याप्नुत (यथा) येन (अमी) योद्धारः (अन्यः अन्यम्) अन्योऽन्यम् (न जानन्) न जानीयुरित्यर्थः । [यजु० १७ । ४७] ॥ १५ ॥

भावार्थ–हे मारुतो! वा हे सेनानायकगण! जो यह शत्रुओंकी सेना बलसे स्पर्धा करतीहुई हमारे सन्मुख आगमन करती है, उस सेनाको कर्मरहित अंधकारसे इस प्रकार आच्छादित करो, कि–जिस प्रकार यह शत्रुसेनाके लोग परस्पर नहीं जानते हुए परस्पर अस्त्र चलाकर नष्ट हों ॥ १५ ॥

मन्त्रः।

यत्र॒ बाणाः॑ स॒म्पत॑न्ति कु॒मा॒रा वि॑शि॒खाऽइ॑व ॥ तन्न॒ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒रदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु ॥ १६ ॥

ॐ यत्रेत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः पंक्तिश्छन्दः। ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च देवते। प्रार्थने विनि० ॥ १६ ॥

भाष्यम्–(यत्र) संग्रामे (विशिखाः) मुण्डिताः (कुमाराः) बालकाः (इव) (बाणाः) शराः (सम्पतन्ति) सव्यक्तया पतन्ति (तत्) तत्र (इन्द्रः) इन्द्रः (बृहस्पतिः) बृहतां पतिः (अदितिः) देवमाता (शर्म) सुखम् (नः) अस्माकम् (यच्छतु) ददातु (विश्वाहा) सर्वदा (शर्म) सुखम् (यच्छतु) ददातु पुनरुक्तिरादरार्था [यजु० १७। ४८] ॥ १६ ॥

भावार्थ- जिस रणक्षेत्रमें वीरगणोंके छोडे हुए बाण इधर उधर गिरते हैं, जिस प्रकार शिखारहित वा लटुरियोंवाले छोटे बालक चपलताके कारण इधर उधर फिरते हैं, उस युद्धमें बृहस्पति देवता अथवा मंत्रोंके पालक विजयके उचित मंत्रोंकी जाननेवाली देवमाता अथवा अखण्डितशक्ति इन्द्र हमको कल्याण प्रदान करें, वह सम्पूर्ण शत्रुओंको मारनेवाला कल्याण प्रदान करें ॥ १६ ॥

मन्त्रः।

मर्मा॑णि ते॒ वर्म॑णा छादयामि॒ सोम॑स्त्वा॒ राजा॒मृते॒नानु॑ वस्ताम् ॥ उ॒रोर्वरी॑यो॒ वरु॑णस्ते कृणोतु॒ जय॑न्तं॒ त्वानु॑ दे॒वा म॑दन्तु ॥ १७ ॥

इति सर्वसंहितायां रुद्रजाप्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ मर्माणीत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः । सोमवरुणौ देवते । कवचप्रयच्छने विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्-हे राजन् (ते) त्वदीयानि (मर्माणि) येषु स्थानेषु विद्धः सद्यो म्रियते तानि मर्माणि (वर्म्मणा) मंत्रपूतेन कवचेन (छादयामि) आच्छादनं करोमि (सोमःराजा) सोमराजा (त्वा) त्वाम् (अनु) छादनानन्तरम् (अमृतेन) अमृतरूपेण द्रव्येण (वस्ताम्) आच्छादयतु (वरुणः) वरुणदेवोऽपि (ते) तव वर्म (उरोर्वरीयः) उत्कृष्टादप्युत्कृष्टम् (कृणोतु) करोतु (जयन्तम्) जयशालिनम् (त्वा) त्वाम् (देवा) देवाः (अनुमदन्तु) महर्षयन्तु । [यजु० १७ । ४९) ॥ १७ ॥

भाषार्थ-हे राजन् मैं । कवचसे आपके मर्मस्थानोंको [कि जिनके छिन्न होनेसे शीघ्रही मरण होता है] आच्छादन करताहूं. राजा सोम आपको अमृतसे आच्छादन करें, और वरुण आपके वर्मको उत्तमोत्तम करें, तथा देवता आपको विजय पाता देखकर आनन्दयुक्त हों ॥ १७ ॥

इत्यप्रतिरथसूक्तम् ।

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्वितस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

ह्रि विभ्राड्बृहत्पिबतु सोम्यम्मद्ध्वायुर्द्धद्यज्ञपतावविहुतम् ॥ वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ॥ १ ॥

ॐ विभ्राडित्यस्य विभ्राड्ऋषिः । जगती छन्दः । सूर्यो देवता । सौर्यपुरोरुक्मंत्रपाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-(विभ्राट्) विशेषेण भ्राजते दीप्यत इति विभ्राट् सूर्यः (बृहत्) महत् (सोम्यम्) सोममयम् (मधु) मधु (पिबतु) पिबतु किङ्कुर्वन् (यज्ञपतौ) यजमाने (अविहुतम्) अकुटिलम् (आयुः) (दधत्) स्थापयत् (यः) सूर्यः (वातजूतः) महावायुना प्रेर्यमाणः सन् (त्मना) आत्मना स्वयमेव (अभिरक्षति) सर्वं जगदधिपश्यन् पालयति "राशिचक्रस्य वायुप्रेर्यत्वात् सूर्यस्यापि तत्प्रेर्यत्वम्" सः सूर्यः (प्रजाः) प्रजाः (पुपोष) वृष्ट्यादिप्रदानेन पोषयति (पुरुधा) बहुधा (विराजति) विशेषेण दीप्यते च ॥ [यजु० ३३ । ३० ।] ॥ १ ॥

भाषार्थ-विशेषदीप्तिमान् सूर्य देवता यजमानमें अखण्ड आयुको स्थापन करतेहुए बडे स्वादुरससे युक्त सोमरूप हविको पान करो, जो सूर्य्य वायुसे प्रेरित आत्माद्वारा प्रजाकी रक्षा करता वा पालता है पुष्ट करता है वह अनेकप्रकारसे विराजमान होताहै । आशय यह कि-जो अधिक कान्तिमान् सूर्य परमात्माके नियमसे वायुवेगसे निरन्तर भ्रमण करते प्रजावर्गकी रक्षा करते हैं पोषण करते हैं और चन्द्रनक्षत्रादिकी ज्योतिरूपसे अनेकरूपसे विराजमान हैं वह आज इस अतिमधुर अधिक सोमरसका पान करें और यजमानकी आयुकी वृद्धि करें ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

उदु॒त्यं जा॒तवे॑दसन्दे॒वँव्वँहन्ति के॒तवः॑ ॥ दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य्य॑म् ॥ २ ॥

ॐ उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । आज्येन शालाद्वार्येऽग्नौ हवने विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्-(केतवः) सूर्यरश्मयः सूर्याश्वा वा (जातवेदसम्) अग्नितेजोमयं यद्वा-जातं वेदः कर्मफलं यस्मात् (त्यम्) प्रसिद्धं तम् (सूर्यं देवम्) द्योतमानं सूर्यम् (विश्वाय) विश्वस्य (दृशे) दर्शनाय (उद्वहन्ति) ऊर्ध्वं वहन्ति ॥ २ ॥

भाषार्थ-ब्रह्मज्योति इस जातवेदस सूर्य देवताको सब संसारकी दर्शनक्रिया सम्पादन करनेके निमित्त ऊर्ध्वभागमें निरन्तर वहन करती है । अथवा उदयको प्राप्त हुए अग्निकी समान समस्त प्राणियोंका कार्य करनेवाले संसारके सब पदार्थोंके दर्शनके निमित्त जिसने सूर्यको प्रकाशित किया है उस परमात्माकी विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भुर॒ण्यन्तं॒ जनाँ॒ २ ॥ ऽ अनु॑ ॥ त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ ३ ॥

ॐ येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(पावक) हे शोधक (वरुण) अनिष्टनिवारक सूर्य्य (त्वम्) त्वम् (येन) येन (चक्षसा) दर्शनेन (जनान्) जातान् प्राणिनः (भुरण्यन्तम्) धारयन्तं पोषयन्तं येमं लोकं येन चक्षसा प्रकाशेन (अनुपश्यसि) अनुक्रमेण प्रकाशयसि तेन ज्ञानेन अस्मानपि भुरण्यतः पश्येरित्यर्थः ॥ [यजु० ३३ । ३२] ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे पावक ! अर्थात् सबके शुद्ध करनेवाले वरुणदेव ! इस सब ब्रह्माण्डको अपनी ज्योतिसे आच्छादन करके स्थित हुए तुम जिस सूर्यरूप ज्योतिसे वा अनुग्रहरूप दृष्टिसे उस सुपर्णरूपको देखते हो अर्थात् सर्वमेधयाजीको पक्षीके समान शीघ्रतासे स्वर्गमें गमन करते देखते हो उसी दृष्टिसे हम अपने जनोंको भी सब प्रकारसे देखिये ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

दैव्यावध्वर्यूऽआगतꣳरथेन सूर्य्यत्वचा ॥ मध्वा यज्ञꣳसमञ्जाथे ॥ तम्प्रत्नथायं वेन-श्चित्रन्देवानाम् ॥ ४ ॥

ॐ दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गायत्री छन्दः । दैव्यावध्वर्यू देवते । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्—(दैव्यौ) देवानामिमौ दैव्यौ (अध्वर्यू) हे अश्विनौ युवाम् (सूर्यत्वचा) सूर्यदीप्तिगता (रथेन) रथेन (आगतम्) आगच्छतम् एत्य च (मध्वा) मधुस्वादुना हविषा सोमपुरोडाशदध्यादिना (यज्ञम्) अस्मद्यज्ञम् (समञ्जाथे) संरक्षतम्, बहूनि हवींषि कुरुत । "तम्प्रत्नथा ७।१२। अयम्वेनः ७ । १६ चित्रन्देवानाम् ७।४२ तिस्रः प्रतीकोक्ताः" [यजु० ३३ । ३३] ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे दिव्य अश्विनीकुमार ! आप सूर्यकी समान कान्तिमान् रथके द्वारा आइये, मधुर हवि सोमपुरोडाश दधि आदिद्वारा यज्ञको सींचकर बहुत हविवाला करो । दूसरे पक्षमें—सूर्य्य कान्तिरूप रथमें आरूढ हुए, यह दिनरात्रिरूप अध्वर्यु अग्निष्टोमादियज्ञके और सृष्टिरूप महायज्ञके सम्पादक हैं ॥ ४ ॥

मंत्रः ।

तम्प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिम्बर्हिषदꣳस्वर्विदम् ॥ प्रतीचीनं वृजनन्दोहसे धुनिमाशुञ्जयन्तमनु यासु वर्द्धसे ॥ ५ ॥

ॐ तम्प्रत्नथा इत्यस्य अवत्सार ऋषिः । निचृदार्षी जगती छन्दः । विश्वेदेवा देवता । शुक्रग्रहग्रहणे विनियोगः ॥ ५ ॥

भाष्यम्—(प्रत्नथाः) पुरातना यजमाना इव (पूर्वथाः) अस्मदीयाः पूर्वे यथा (विश्वथा) विश्वे सर्वे प्राणिनो यथा (इमथा) इदानीं वर्तमाना यजमाना यथे-

स्तुत्या फलं लभन्ते हे इन्द्र त्वम् (ज्येष्ठतातिम्) उत्कृष्टविस्तारमथवा प्रशस्यम् (बर्हिषदम्) यज्ञेऽपि तिष्ठन्तम् (स्वर्विदम्) सर्वज्ञं सर्वस्य लम्भयितारं फलं भावयितारं (प्रतीचीनम्) आत्मनोऽभिमुखम् (वृजनम्) बलवन्तम् (आशुम्) शीघ्रगामिनम् (जयन्तम्) सर्वमभिभवन्तम् (धुनिम्) कम्पयितारं शत्रूणामिति शेषः। इन्द्रं स्तुत्या साधनेन (दोहसे) पूरयसि (यासु) स्तुतिषु (वर्द्धसे) प्रवृद्धो भवसि तास्विति इन्द्रं यथा स्तुत्येति यास्विति व्यत्ययेन वचनम्। [यजु० ७।१२] ॥५॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! जो कि तुम, हमसे प्रतिकूल गमन करनेवाले आलस्य अश्रद्धा आदिको हमसे भिन्न अर्थात् विनाश करतेहो जिन क्रियाओंमें आपके अनुग्रहसे शत्रुओंको कम्पित करते, शुभकारी सम्यक् अनुष्ठानसे और यजमानोंसे अधिक इस यजमानके पीछे होकरके और स्तुतिसे जो तुम वृद्धिको प्राप्त होतेहो उन क्रियाओंमें सर्वश्रेष्ठ उस तुमको हम स्तुति करतेहैं। जैसे पुरातन भृगु आदिने, पूर्व पितर आदिने, अतीत यजमानोंने, इस समयके यजमानोंने तुम्हारी स्तुति की है उसी प्रकार हम करते हैं। जो कि तुम सर्वश्रेष्ठ यज्ञके समीपतामें स्थित यजमानके देने योग्य स्वर्गको जानतेहो ॥ ५ ॥

मन्त्रः।

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने। इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ ६ ॥

ॐ अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छं०। सोमो दे०। मन्थिग्रहणे वि० ॥ ६ ॥

भाष्यम्—(ज्योतिर्जरायुः) ज्योतिर्विद्युल्लक्षणं जरायुः वेष्टनं यस्य सः। (अयम्) (वेनः) कान्तश्चन्द्रः (रजसः) उदकस्य (विमाने) निर्माणकाले श्रीमान्ते यत (पृश्निगर्भाः) अपः (चोदयत्) प्रेरयति पृश्निर्द्युलोक आदित्यो वा गर्भोऽवस्थानं यासां ताः द्युलोकस्था आवस्था वा अपो वर्षति (विप्राः) विद्वांसो ब्राह्मणाः (इमम्) (सोमम्) सोमम् (अपाम्) (सूर्यस्य) देवस्य (संगमे) संगमे सति (शिशुं न) बालमिव (मतिभिः) मतिपूर्वाभिर्वाग्भिः (रिहन्ति) स्तुवन्ति। "आपो अपां सूर्यस्य च संगमे गृह्णन्ते ता वै वहन्तीनां स्यन्दमानानां दिषा गृह्णीयात्" इति श्रुतेः। [यजु० ७।१६] ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह अनुपमकान्तिमान् चन्द्रदेवता जलवर्षण करनेके निमित्त उद्यत होकर पृश्निगर्भ (पृश्निशब्दसे सूर्य और द्युलोक लेने) पृथिवीके समस्त रस सूर्यकी किरणोंसे खींचकर द्युलोकमें मेघरूपसे बढतेहुए काल पायकर वर्षते हैं। अतएव इस स्थानमें इस मेघरूपगर्भके

पि सूर्य्य और माता द्युलोक हैं, और ज्योतिर्जरायु (ज्योति बिजली, सो यहांपर जरायु-गर्भ-वेष्टन है) वृष्टिको प्रेरण करतेहैं, विद्वान्लोग जलसंगमके विषयमें इनको सूर्य्यका प्रियपुत्र समझकर स्तुति कियाकरते हैं ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥ आप्प्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षᳬ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ७ ॥

ॐ चित्रमित्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यो देवता । शालाद्वार्येऽग्नौ हवने विनियोगः ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(देवानाम्) दीव्यन्तीति देवा रश्मयस्तेषां देवजनानामेव वा (अनीकम्) तेजःसमूहरूपम् (चित्रम्) आश्चर्यकरम् (मित्रस्य) (वरुणस्य) (अग्नेः) त्रयाणां देवानाम् (चक्षुः) उपलक्षितानां जगतां चक्षुः असौ सूर्यः (उदगात्) उदितो बभूव उदयं प्राप्य च (द्यावापृथिवी) दिवं पृथिवीम् (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (आप्राः) स्वकीयेन तेजसा आ समन्तादापूरितवान् । ईदृग्भूतमण्डलान्तर्वर्ती (सूर्यः) सूर्यदेवोऽन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकः परमात्मा (जगतः) जंगमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (आत्मा) स्वरूपभूतः सकलसंसारमयोऽयमेव सूर्य इत्यर्थः ॥ [यजु० ७ । ४२] ॥ ७ ॥

भाषार्थ-अहो ! क्या आश्चर्य है, यह किरणपुंज देवता प्रतिदिन ही उदित होतेहैं, भूलोकसे द्युलोकतक तीनों लोकोंमें अपनी किरणोंका जाल विस्तार करके समस्त संसारके नेत्ररूप होकर प्रकाशमान होरहेहैं, यह स्थावर जंगम समस्तपदार्थोंके जीवन और सूर्य्यनामसे प्रसिद्ध हैं, इन देवताके निमित्त दियाहुआ यह हवि सुन्दरप्रकारसे ग्रहण कियाजाय ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ॥ अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वञ्जगदभिपित्वे मनीषा ॥ ८ ॥

ॐ आन इडाभिरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । त्रिष्टुप् छं० । सविता देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्-(विश्वानरः) विश्ववर्तिनो जनान् स्वत एव रक्षकः (सविता) (देवः) प्रेरको देवः (नः) अस्माकम् (विदथे) यज्ञे (सुशस्तिभिः) शोभनशंसनहेतुभूतैः (इडाभिः) यज्ञकारणभूताभिः इडाभक्षणेन सुशस्ति शोभना शस्ति प्रशंसा यस्यां क्रियायां तथा यथा सर्वे इडां भक्षयन्ति तथा (आ एतु) आगच्छतु । सूर्यमुक्त्वा देवानाह-(युवानः) हे जरारहिता देवाः (अपि) निश्चितम् (अभिपित्वे) आगमनकाले (यथा) येन प्रकारेण (मत्सथ) यूयं तृप्यथ तथा (नः) अस्माकम् (विश्वम्) सर्वम् (जगत) पुत्रगवादिकम् (मनीषा) मनीषया बुध्या तर्पयथ । यथा भवद्भिस्तृप्तिः क्रियते तथास्मत्प्रजास्तर्पणीया इत्यर्थः । [यजुः ३३ । ३४] ॥ ८ ॥

भाषार्थ-सब प्राणियोंका हितकारी सबका प्रेरक देव हमारे सुन्दर अन्नोंद्वारा प्रशंसायुक्त यज्ञगृहमें आगमन करैं, अर्थात् अन्नोंसे सुन्दर प्रशंसासंपन्न यज्ञगृहमें आगमन करें । हे देवताओ ! जरारहित तुम आगमनकालमें जिस प्रकारसे हो वैसे तृप्त होकर हमारे संपूर्ण जंगम पुत्र गौ आदिको बुद्धिपूर्वक सब प्रकार तृप्त करो ॥ ८ ॥

विशेष-अथवा विश्वके हितकारी सविता देवता, प्रतिदिन अपने नियमसे उदित होकर इस सृष्टियज्ञमें अन्नउत्पन्नकी प्रशंसा लाभ करतेहैं । उस अन्नसे हम देवताओंको तृप्त करतेहैं वे हमारे परिवारको तृप्त करैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभिसूर्य्य ॥ सर्वन्तदिन्द्रतेवशे ॥ ९ ॥

ॐ यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षौ ऋषिः । गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(वृत्रहन्) वृत्रस्यायामावरकस्य मेघस्य हन्तः (सूर्य) हे सूर्यात्मकेन्द्र (अद्य) अस्मिन्दिने (यत् कच्च) यत्किञ्चित्पदार्थजातम् (अभि) अभिमुखीकृत्य (उदगाः) प्रादुर्भूतोऽसि (इन्द्र) हे ऐश्वर्यसम्पन्न (तत्सर्वम्) स्थावरजंगमात्मकं जगत् (ते) तव (वशे) त्वदधीनं भवति । उदिते सूर्ये त्वदधीनं प्रातःकर्म कुर्वन्ति जुह्वति च । [यजु० ३३ । ३५] ॥ ९ ॥

भाषार्थ-हे अंधकारके नाशक ! हे ऐश्वर्ययुक्त सूर्यदेव ! आज जो कहीं किसी प्रदेशमें उदय होतेहो यह सब तुम्हारे वशमें हैं अर्थात् जो लोक सूर्य्यके प्रकाशसे प्रकाशित हैं उनकी स्थिति सूर्यकेही अधीन है ॥ ९ ॥

मन्त्रः ।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ॥ विश्वमाभासि रोचनम् ॥ १० ॥

ॐ तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्–(सूर्य) हे सूर्य त्वम् (तरणिः) तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्तासि तथा च स्मर्यते–“योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते” ॥ यद्वा उपासकान् रोगात्तारयसि (विश्वदर्शतः) विश्वैः सर्वैः प्राणिभिर्दर्शनीयः । यद्वा–विश्वं सकलभूतजातं दर्शतः द्रष्टव्यं प्रकाश्यं येन सः तथोक्तः । (ज्योतिष्कृत्) प्रकाशस्य कर्ता । यद्वा–चन्द्रादीनां रात्रौ प्रकाशयिता (असि) असि (विश्वम्) व्याप्तम् (रोचनम्) रोचमानमन्तरिक्षमासमन्तात् (भासि) प्रकाशयसि । यद्वा–हे सूर्य अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरक परमात्मन् त्वम् तरणिः संसाराब्धेः तारकोऽसि यस्मात्त्वं ‘विश्वदर्शतः’ विश्वैः सर्वैर्मुमुक्षुभिर्दर्शितः द्रष्टव्यः साक्षात्कर्तव्य इत्यर्थः । ‘ज्योतिष्कृत्’ सूर्यादेः कर्ता ईश्वरस्त्वं चिद्रूपतया ‘विश्वं’ सर्वं दृश्यजातं ‘रोचनं’ दीप्यमानं यथा भवति तथा (आभासि) प्रकाशयसि चैतन्यस्फुरणे हि सर्वं जगद्दृश्यते । “तमेव भान्तमनु भाति सर्वम्” इत्यादि श्रुतेः । [यजु० ३३।३६॥१०॥

भावार्थ–हे सूर्यदेव ! आप महामार्गमें गमन करनेवाले, अथवा उपासकोंके रोग दूर करनेवाले सब प्राणियोंके दर्शनयोग्य; अथवा–दृश्यवर्गके प्रकाशक हो । अथवा–चन्द्रादिकमें भी आपहीका प्रकाश है, आपही उनके प्रकाशक हैं, आपही दीप्यमान अन्तरिक्षका प्रकाश करते हो । अथवा–अन्तर्यामीरूपसे प्रेरक हे परमात्मन् ! संसारसागरसे आपही पार लगानेवाले हैं । इस कारण सम्पूर्ण मुमुक्षुजनोंसे आपही देखनेयोग्य हैं । इससे आपही साक्षात् करनेके योग्य हैं ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततꣳ सञ्जभार ॥ यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ११ ॥

ॐ तत्सूर्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-(सूर्यस्य) सर्वप्रेरकस्य आदित्यस्य (तत्) (देवत्वम्) ईश्वरत्वम् (महित्वम्) महत्त्वम् माहात्म्यञ्च यत् (कर्तोः) कर्मणोः (मध्या) मध्ये (विततम्) विस्तीर्णं स्वकीयं रश्मिजालम् (सञ्जभार) अस्तं गच्छन्नस्माल्लोकात्स्वात्मनि उपसंहरति (यदा) यस्मिन्नेव काले (हरितः) रसहरणशीलान् स्वरश्मीन् हरिद्वर्णानश्वान्वा (सधस्थात्) सहस्थानादस्मात्पार्थिवाल्लोकादादाय (इत्) एव (अयुक्त) अन्यत्र संयुक्तान् करोति । यद्वा-यदा असौ स्वरश्मीनश्वान् सधस्थात् सह तिष्ठत्यस्मिन्निति सधस्थो रथस्तस्माद्युक्त अयुक्त (आत्) अनन्तरमेव (रात्री) निशा (वासः) आच्छादयितृतमः (सिमस्मै) सर्वस्मै (तनुते) विस्तारयति । एवमेक आदित्यसहितं ज्योतिरन्यत्र तमः आदित्यप्रभावाद्भसतीत्यभिप्रायः । [यजु० ३३।३७] ॥ ११॥

भावार्थ-सूर्यका यही देवत्व है यही महत्त्व है, कि जो ईश्वरके कार्यश्रेष्ठ जगत्के मध्यमें स्थित होकर विस्तीर्ण किये ग्रहमंडलको अपनी किरणोंद्वारा अथवा अपने आकर्षणसे निज-कक्षोंमें नियमित रखते हैं, जबही हरितवर्णकी रश्मियोंसे युक्त आकाशमंडलसे अपनेमें युक्त करते हैं, अर्थात्-जब यह संध्याकालमें किरणोंको आकाशसे अपनेमें युक्त करते हैं तब रात सबके निमित्त वस्त्रको विस्तार करती है। अर्थात् अंधकारसे आच्छादन करती है। अथवा-जिस समय यह रथारोहण कर गमन करते हैं; रात्रि अपने सीमान्तमें वस्त्राच्छादन करती है। अर्थात् रात्रिरूपी अंधकार दिशाओंके मध्यमें गमन करता है ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ॥ अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ १२ ॥

ॐ तन्मित्रस्येत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ १२ ॥

भाष्यम्--(सूर्यः) आदित्यः (द्योः) द्युलोकस्य (उपस्थे) संगमे (मित्रस्य) मित्रदेवस्य (वरुणस्य) वरुणदेवस्य (तत्) (रूपम्) रूपम् (कृणुते) कुरुते येन रूपेण जनान् (अभिचक्षे) अभिचष्टे पश्यति, मित्ररूपेण सुकृतिनोऽनुगृह्णाति, वरुणरूपेण दुष्कृतिनो निगृह्णातीत्यर्थः । (अस्य) सूर्यस्य (अन्यत्) एकम् (पाजः)

रूपम् (अनन्तम्) कालतो देशतस्तथा परिच्छेद्यम् (रुशत्) शुक्लं दीप्यमानं जरा-मरणाद्ययुक्तं विज्ञानघनानन्दमयमित्यर्थः । (अन्यत्) (कृष्णम्) द्वैतलक्षणं रूपम् (हरितः) दिश इंद्रियवृत्तयो वा (संभरन्ति) धारयंति । इंद्रियग्राह्यं द्वैतरूपमेकं शुद्धं चैतन्यमद्वैतमिति द्वे रूपे सूर्यस्य सगुणं निर्गुणं ब्रह्म सूर्य एवेत्यर्थः । [यजु० ३३।३८]॥१२॥

भाषार्थ-सूर्य द्युलोककी गोदीमें मित्र और वरुणका वह रूप करता है जिससे मनुष्योंको देखता है अर्थात्--मित्ररूपसे पुण्यात्माओंपर अनुग्रह करता, वरुणरूपसे पापियोंको निग्रह करता है. इस सूर्यका एक रूप देशकालसे अपरिच्छेद्य शुद्ध दीप्यमान विज्ञानघनानन्द ब्रह्म ही है। एक कृष्णवर्ण द्वैतलक्षणवाला रूप है उसको दिशा वा इन्द्रियवृत्ति धारण करती है। अर्थात् इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप है। एक शुद्धचैतन्य है इस कारण ब्रह्मके सगुण निर्गुण दो रूप कहे हैं॥ १२॥

विशेष--अद्वैतरूप मित्र अर्थात्--उत्तरायण दिन है, इसमें पुण्यात्मा गमन करते हैं, कृष्ण दक्षिणायन रात्रि है, इसमें पापियोंका वरुणरूपसे निग्रह करता है॥ १२॥

मन्त्रः ।

बण्महाँ२॥ऽअसिसूर्य्यबडादित्यमहा २॥ऽ असि ॥ महस्तेसतोमहिमापनस्यतेद्धादेव-महाँ२॥ऽअसि॥ १३॥

ॐ बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । बृहती छन्दः । सूर्यो देवता वि० पू०॥ १३॥

भाष्यम्-(सूर्य) हे सूर्य त्वं (बट्) सत्यम् (महान्) तेजसाधिकः (असि) महदसि ब्रह्मेत्यर्थः। (आदित्य) हे आदित्य (बट्) सत्यम् (महान् असि) बलेनाप्यधिकोऽसि। किञ्च-(महः) महतः (सतः) (ते) तव (महिमा) (महाभाग्यम् (पनस्यते) सर्वैः प्राणिभिः स्तूयते पूज्यते वा, अतः (देव) हे देव दानक्रीडादियुक्त (अद्धा) तत्त्वतः (महान् असि) वीर्येणाऽप्यधिकोऽसि अभ्यासे भूयांसमर्थमन्यत यथा दर्शनीयोऽर्थनीयो न पुनरुक्तिदोषः। [यजु० ३३। ३९]॥ १३॥

भाषार्थ-हे जगत्को अपने अपने कार्यमें प्रेरण करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन्! सत्य ही आप सबसे अधिक हो, हे आदित्य! सबके ग्रहण करनेवाले सत्यही आप बडे हो, बडे होनेसे आपकी महिमा लोकोंसे स्तुति की जाती है, दीप्यमान परमात्मन्! सत्यही तुम सबसे श्रेष्ठ हो आदरके निमित्त पुनरुक्ति है॥ १३॥

मन्त्रः ।

बट्सूर्य्य श्रवसा महाँ २ ॥ऽअसि सुत्रा देव महाँ २ ॥ असि ॥ मुह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ १४ ॥

ॐ बट्सूर्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । सतोबृहती छन्दः । सूर्यो दे० । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्-(सूर्य) हे सूर्य (बट्) सत्यम् (श्रवसा) श्रवणीयेन बलेन (महान् असि) सर्वाधिकोऽसि (देव) हे द्योतमान (सत्रा) सत्यम् (महानसि) अधिकोऽसि किञ्च-(मह्ना) स्वकीयमहत्त्वेन (देवानाम्) सुराणां मध्ये (असुर्यः) असुराणां हन्ता । यद्वा-असुरस्यास्तीति असुरः प्राणस्तस्मै हितः प्राणिनां हित इत्यर्थः । (पुरोहितः) प्रथमपूज्यः (विभुः) व्यापकः ते (ज्योतिः) तेजः (अदाभ्यम्) केनाप्यहिंस्यम् । यद्वा-अनुपहिंस्यज्ज्योतिः विज्ञानघनानन्दमयमित्यर्थः । [यजु० ३३ । ४०] ॥ १४ ॥

भावार्थ-हे सूर्य ! आप सत्यही धन वा यशसे वा अन्नके प्रगट करनेसे श्रेष्ठ हो, हे दीप्यमान प्राणियोंके हितकारी देवताओंके मध्यमें अग्रस्थापित अर्थात्-सबकार्योंमें प्रथम पूज्य अर्थात्-प्रथम तुमको अर्घदान करनेपर पीछे दूसरे देवताओंकी पूजामें अधिकार है, व्यापक उपमारहित किसीसे न रुकनेवाले तेजसे युक्त आप यज्ञद्वारा महत्त्वसे अधिक श्रेष्ठ हो, अर्थात् तुम माहात्म्यके प्रभावसे एककालमें सर्वदेशव्यापी प्रतिद्वन्द्वीशून्य ज्योति विस्तार करते प्राणिमात्रके हितकारी स्वरूपसे सबके आगे पूजनीय हो ॥ १४ ॥

मन्त्रः ।

श्रायन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ॥ वसूनि जाते जनमानऽओजसा प्रति भागन्न दीधिम ॥ १५ ॥

ॐ श्रायन्त इत्यस्य नृमेध ऋषिः । बृहती छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्-हे अस्मदीया जनाः यथा सूर्यरश्मयः (सूर्यम्) सूर्यम् (श्रायन्त इव) समाश्रिताः सूर्यं भजन्ते तथा (इन्द्रस्य) इन्द्रसम्बन्धीनि, इन्द्रानुज्ञातानि (विश्वेत्)

विश्वानि धनानि (भक्षत) भजत (वसूनि) धनानि पुत्रपौत्रप्रपौत्रादौ (जनमाने) जनिष्यमाणे भविष्यत्काले (ओजसा) बलेन ज्ञानसमुच्चयकारितया (प्रतिभागम्) (न) नकार उपमार्थीयः प्रतिपुरुषं भागमिव (दीधिमः) स्थापयामः । इन्द्रः यानि वसूनि बलेन जनिष्यमाणानि करोति पितृप्रभागमिव तानि धनानि प्रतिधारयेमेत्यर्थः । [यजु० ३३ । ४१] ॥ १९ ॥

भाषार्थ—सूर्यको आश्रय करतीहुई किरणें ही इन्द्रके संपूर्ण धन अर्थात् वृष्टि धान्यनिष्पादक सम्पत्तिको सेवन करती भक्षण करती हैं, अर्थात् विभागकरके प्राणियोंको देती हैं । आशय यह कि, सूर्यकी किरणें इन्द्रकी दी हुई वृष्टिको भूमिमें विभाग करती हैं। और हम उन धनोंको पुत्रादिके उत्पन्न होनेमें अपने भागके समान तेजके सहित धारण वा स्थापन करते हैं ॥१९॥

सरलार्थ—हम सूर्यको आश्रय करके जिससे विश्वाधिपति परमपिताके विषयभोगमें समर्थ होते हैं, उनके उत्कृष्ट वा उत्सृज्यमान संपूर्णसंपत्तिमें भी मनके बलपूर्वक अपने २ आत्मभागमें अधिकार किये हैं, अर्थात्—सूर्यकी सहायतासे ही सब कार्यकी प्रवृत्ति होती है। आशय यह कि—भूमिअधिकारीके भाग्यके अनुसार न्यूनाधिक वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

मन्त्रः ।

अद्या देवाऽउदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात् ॥ तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः ॥ १६ ॥

ॐ अद्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । देवा देवता दुष्टादिस्वप्नहनने विनियोगः ॥ १६ ॥

भाष्यम्—(देवाः) हे द्योतमानाः सूर्यरश्मयः (अद्य) अस्मिन्काले (सूर्यस्य) आदित्यस्य (उदिता) उदयकालीनाः उदये सति इतस्ततः प्रसरंतो यूयमस्मात् (अꣳहसः) पापात् (निष्पिपृत) निर्मुञ्चत (अवद्यात्) दुर्यशसोऽपि निर्मुञ्चत । यदिदमस्माभिरुक्तम् (नः) अस्मदीयम् (तत्) (मित्रः) अहरभिमानी देवः (वरुणः) अनिष्टानां निवारयिता राज्यभिमानी (अदितिः) अखण्डनीया देवमाता (सिन्धुः) स्यन्दनशीलोदकाभिमानी देवता (पृथिवी) भूलोकस्याधिष्ठात्री (द्यौः) द्युलोकाभिमानी (उत) समुच्चये (मा) माम् (महन्ताम्) पूजयन्तु अनुमन्यतामिति [यजु० ३३ । ४२] ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे रश्मियोंमें स्थित देवताओ । आज अब सूर्यका उदय हमको पापसे तथा दुर्यशसे पृथक् करै, मित्र, वरुणदेवता, देवमाता, सिन्धुनदी, पृथिवी और स्वर्ग इस हमारे वचनको अनुमोदन करैं ॥ १६ ॥

मन्त्रः।

आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृत-
ञ्चमर्त्यञ्च॥ हिरण्ययेनसवितारथेनादेवो
यातिभुवनानिपश्यन्॥ १७॥

इति सꣳहितायांरुद्रपाठेचतुर्थोऽध्यायः॥४॥

ॐ आकृष्णेन इत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। सविता देवता। सावित्रग्रहणे वि० ॥ १७॥

भाष्यम्–(सविता) देवानां प्रसविता (देवः) स्तुतिदीप्तिक्रीडायुक्तः (कृष्णेन) कृष्णवर्णेन (रजसा) लोकेन 'लोका रजांस्युच्यन्ते' अन्तरिक्षलोको हि सूर्यागमनात्पूर्वं कृष्णवर्णो भवति तेनान्तरिक्षमार्गेण (आवर्तमानः) पुनः पुनरागच्छन् (अमृतम्) देवम् (मर्त्यम्) मनुष्यम् (च) (निवेशयन्) स्वस्वव्यापारे स्थापयन्। यद्वा–'अमृतम्' मरणरहितं प्राणं 'मर्त्यम्' मरणसहितं शरीरं च 'निवेशयन्' स्थापयन् (भुवनानि) सर्वान् लोकान् (अपश्यन्) अवेक्षमाणः प्रकाशयन्नित्यर्थः। (हिरण्येन) सुवर्णनिर्मितेन (रथेन) यानेन (आयाति) अस्मत्समीपमागच्छति। भुवनवर्तिलोकान् पुण्यपापकर्तॄन् क्षिप्रं निरीक्षमाणः यः सविता देवः देवमनुष्यव्यापारस्थापकः यश्च पुण्यपापसाक्षी तस्यार्चादिकमुचितमिति वाक्यार्थः। [यजु० ३३। ४३] ॥ १७॥

भाषार्थ–सबके प्रेरण करनेवाले सविता देवता सुवर्णमय रथमें आरूढ होकर कृष्णवर्ण रात्रिलक्षणवाले अन्तरिक्ष मार्गमें पुनरावर्तन क्रमसे भ्रमण करते देवादि और मनुष्यादिकों अपने अपने व्यापारमें स्थापन करते सम्पूर्ण भुवनोंको देखते हुए आगमन करते हैं। अथवा सब लोकोंको प्रकाश करते आगमन करते हैं। आशय यह कि–भुवनवर्ती लोकोंके पुण्य पापको शीघ्रतासे निरीक्षण करते हुए पुण्यपापके साक्षी यह सविता देवता हैं इनकी उपासना पूजा उचित है॥ १७॥

इति श्रीरुद्राष्टके मुरादाबादनिवासि–पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य-
भाषाभाष्यसमन्वितश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

ॐ नम॑स्तेरुद्रम॒न्यव॑ऽउतोत॒ऽइष॑वे॒नम॑ः ॥ बा॒हुभ्या॑मु॒ततेनम॑ः ॥ १ ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । गायत्री छन्दः । रुद्रो दे० । पाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-हे रुद्र ! यद्वा रोदनं रु दुःखं द्रावयति रुद्रः । यद्वा-रुद्रमुपशान्तयति, ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः रवणं रुत् ज्ञानं भावे क्विप् तुगागमः । रुत् ज्ञानं राति ददातीति रुद्रः मोहनिवारकः परमेश्वरः । यद्वा-पापिनो जनान् दुःखभोगेन रोदयतीति रुद्रः जगच्छासकः । हे रुद्र (त) तव (मन्यवे) रोषाय (नमः) नमस्कारोऽस्तु, (उत) अपि (ते) तव (इषवे) शराय (नमः) नमस्कारोऽस्तु (उत) अपि च (ते) तव (बाहुभ्याम्) भुजाभ्याम् (नमः) नमः तव क्रोधबाणहस्ता अस्मच्छत्रुष्वेव पतन्तु नास्मास्वित्यर्थः । [यजुर्वेदीयषोडशोऽध्यायः] ॥ १ ॥

भाषार्थ-हे दुःखके दूर करने अथवा ज्ञानके देनेवाले अथवा पापी जनोंको उनका कर्मफल देकर रुलानेवाले रुद्रदेव ! आपके क्रोधके निमित्त नमस्कार है ! और तुम्हारे बाणोंके निमित्त नमस्कार है ! और तुम्हारी दोनों भुजाओंके निमित्त नमस्कार है, अर्थात् हे रुद्रदेव ! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओंपर पडें हमको शान्ति हो ॥ १ ॥

विशेष-तत्त्ववादी मेघोंके अन्तर शक्तिमय रुद्रका निवास कहते हैं । कि गर्जना उनका क्रोध है । उल्कापात बाण हैं, समुद्रमें उठे तरंग एक भुजा, और महाधारा वर्षा उनकी दूसरी भुजा-रूप हैं । उससे शत्रुओंका अनिष्ट हो और हमको मंगल हो । अथवा-पापियोंके नाशको तुम बाण और क्रोधरूप हो । इस अध्यायमें परमेश्वरका सगुणनिर्गुणरूप उग्रदेवोपासनासे वर्णन किया है ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

याते॑ रुद्र॒शि॒वात॒नूरघो॒राऽपा॑पकाशिनी ॥ तया॑नस्त॒न्वा॒शन्त॑मया॒गिरि॑शन्ता॒भिचा॑कशीहि ॥ २ ॥

ॐ यात इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आर्षी स्वराडनुष्टुप्छन्द रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्-(रुद्र) हे देव (या) (ते) तव (अघोरा) सौम्या (अपापकाशिनी) पापफलदुःखं काशयति प्रकाशयति पापकाशिनी न पापकाशिनी या भक्तानाम् पुण्यफलमेव ददाति न पापफलमित्यर्थः । (शिवा) शान्ता मंगलरूपा (तनूः) शरीरमस्ति (गिरिशन्त) कैलासवासी गिरौ कैलासे स्थितः प्राणिनां शं सुखं विस्तारयति वा गिरि वाचि स्थितः शं तनोति वा गिरौ मेघे स्थितो वृष्टिद्वारेण शं तनोति वा गिरौ शेते गिरिशः अमति गच्छति जानातीति वा अन्तः सर्वज्ञः, 'अमगतौ' भजने शब्दे कर्तरि क्तः। गिरिशश्चासावन्तश्च गिरिशन्तस्तत्सम्बुद्धिः शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् । (तया) (शन्तमया) सुखतमया (तन्वा) शरीरेण (नः) अस्मान् (अभिचाकशीहि) अभिपश्य ॥ २ ॥

भावार्थ-कैलासपर्वतपर स्थित होकर प्राणियोंके सुखको विस्तार करनेवाले अथवा वाणीमें स्थित होकर सुखका विस्तार करनेवाले, अथवा मेघमें स्थित होकर वर्षाआदिके रूपसे सुखको विस्तार करनेवाले, वा पर्वतपर शयन करनेवाले सर्वज्ञ, हे रुद्र ! जो तुम्हारा शान्त मंगलरूप निष्प्रमतारहित-होनेसे सौम्य पाप फलको न देकर पुण्यफलका ही देनेवाला शरीर है, उस सुखभरे शरीरसे हमको अवलोकन कीजिये ॥ २ ॥

विशेष-जो सर्वव्यापी आत्माका भी आत्मा है दृश्य अदृश्य संपूर्ण शरीरोंमें उसकी स्थिति है केवल तत्त्व विचारवाले कहते हैं कि, इस स्थलमें रुद्रका मेघोदयरूप शरीर देखनेकी प्रार्थना है, किन्तु जिससे गृहपतन और बाढकी प्राप्ति हो उसके उदयकी प्रार्थना नहीं है. किन्तु जिसके उदयसे कृषिआदिकी उन्नति हो उसीकी प्रार्थना है । यहाँ रुद्रका कल्याणमय शरीर और कैलासवास होनेसे शिवका विग्रह भी कथन किया है, अथवा हे रुद्र ! आपका कल्याणकारी विस्तार मनोहर है, पापोंको दूर करके हमको महासुख दो ! इससे सगुण ब्रह्म प्रतिपादित है ॥ २ ॥

मन्त्रः ।



यामिषुंगिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ॥ शिवां गिरित्र तां कुरु मा हि ᳪ सीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

ॐ यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छं० । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(गिरिशन्त) देव (याम्) (इषुम्) शरम् (अस्तवे) शत्रून् क्षेप्तुं (हस्ते) करे (बिभर्षि) धारयसि (गिरित्र) गिरौ कैलासे स्थित्वा भूतानि त्रायते इति तत्सम्बुद्धिः (ताम्) बाणम् (शिवाम्) कल्याणकारिणीं (कुरु) किञ्च (पुरुषम्) पुत्रपौत्रादिकम् (जगत्) जंगममन्यदपि गवाश्वादिकम् (माहिंसीः) मावधीः सर्वथाऽस्मद्गेहे शान्तिं कुर्वित्यर्थः ॥ ३ ॥

भाषार्थ-हे वेदवाणीमें स्थित ! वा पर्वतपर उदित मेघवृन्दके अन्तर स्थित होकर जगत्का कल्याण करनेवाले कैलास वा वेदवाणीमें स्थित होकर प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले तुम जिस बाणको शत्रुओंके नाश वा प्रलयमें जगत्के अस्त करनेको हाथमें धारण करते हो, हे रक्षक ! उस बाणको कल्याणकारी करो । पुत्र पौत्र आदि जगत्के गवाश्वादिको मत मारो; अर्थात् अकालमें हमको और इस संपूर्ण जगत्को नष्ट मत करो ॥ ३ ॥

विशेष-गिरिशृङ्गमें जो रहते हैं निम्नभागके मेघोपद्रव उनका अनिष्ट नहीं करसकते इस निमित्त अधश्चारी दुर्घटनाके अन्तर स्थित; देवताको गिरित्र कहते हैं। यह तत्त्ववादी जन कहते हैं ॥ ३ ॥

मंत्रः ।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ॥
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽअसत् ॥

ॐ शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टु० छं० । रु० दे० । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्-(गिरिश) गिरौ कैलासे शेते गिरिशः तत्सम्बुद्धौ हे गिरिश (शिवेन) मंगलरूपेण (वचसा) वचनेन (त्वा) त्वाम् (अच्छ) प्राप्तुम् (वदामसि) वदामः प्रार्थयामहे (नः) अस्माकम् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (जगत्) जंगमं मनुष्यपश्वादि (यथा) येन प्रकारेण (अयक्ष्मम्) व्याधिरहितम् (सुमनाः) शोभनं मनः (असत्) तथा कुर्वित्यर्थः ॥ ४ ॥

भाषार्थ-हे वेदवचन वा कैलासमें शयन करनेवाले ! मंगल स्तुतिरूप वचनसे तुमको प्राप्त होनेको हम प्रार्थना करते हैं । हमको सबही जंगम, मनुष्य, पशु आदि जिस प्रकार नीरोग शुभ मनवाला होवे सो करो, अर्थात् यह जगत् स्वस्थ और रोगरहित हो । यही आपसे हमारी प्रार्थना है सो स्वीकार करो ॥ ४ ॥

विशेष-जिसका उदय सर्वदा ही पर्वत पृष्ठपर देखा जाताहै, ऐसे मेघके अन्तर स्थित देवताको गिरिश कहते हैं, यह तत्त्ववादी जनोंका कथन है । तात्पर्य यह है कि रुद्रदेवता सर्वत्र विद्यमान हैं वह जगत्में मंगल करैं प्रजामें कोई रोग न हो ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥

ॐ अध्यवोचदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(अधिवक्ता) अधिवदनशीलः निगमकथनतत्परः (प्रथमः) पूज्यत्वात्सर्वेषां मुख्यः (दैव्यः) देवेभ्यो हितः (भिषक्) स्मरणेनैव रोगनाशको रुद्रः (अध्यवोचत्) मां सर्वाधिकं कथति, अयं याजकः सर्वाधिको भवत्विति । परोक्षमुक्त्वा प्रत्यक्षमाह–हे रुद्र ! (च) (सर्वान्) सम्पूर्णान् (अहीन्) सर्पव्याघ्रादीन् (जम्भयन्) विनाशयन् (सर्वाः) समस्ताः (अधराचीः) अधोधोगमनशीलाः (यातुधान्यः) राक्षसीः (च) (परासुव) अस्मत्तो दूरीकुरु ॥ ५ ॥

भाषार्थ–अधिकवचनशील सर्वदा निगम कथन करनेवाले, सब देवताओंमें मुख्य, पूजनीय, देवताओंके हितकारी, स्मरणसे ही संसार तथा जन्म मरणके रोगनाशक रुद्र हमको सबसे अधिक कहैं, अर्थात् सबसे अधिक करैं । और सब सर्प व्याघ्र आदिको विनाश करते हुए संपूर्ण अधोगमनशील राक्षसी आदिको भी हमसे दूर करो ॥ ५ ॥

अध्यात्म–परमात्मा हमको महावाक्यका उपदेश करो और सर्पके समान डसनेवाले काम आदिको नाश करो, और अधोगमनशील कामकलारूपी राक्षसियोंको दूर करो. अथवा संपूर्ण विद्याओंके कहनेसे ही यह सबमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं, इसीसे दिव्यगुणयुक्त ज्ञानसे सबके संसारी रोगके दूर करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

जडवादी कहते हैं कि, गर्जन ही प्रधान शब्द है । अति वृष्टि होनेसे ज्वरादि रोग और सर्पोंका प्रादुर्भाव होता है इनसे मृत्युसंख्या अधिक होनेकी संभावना है, प्रेतभय उपस्थित न हो इस कारण तीनों भयके निवारण करनेके निमित्त रुद्रदेवसे प्रार्थना है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः ।। ये चैनꣳ रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेडऽईमहे ॥ ६ ॥

ॐ असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्—आदित्यरूपेणाऽत्र रुद्रः स्तूयते—(यः असौ) प्रत्यक्षो रुद्रो रविरूपश्च (ताम्रः) उदयेऽत्यन्तरक्तवर्णः (च अरुणः) अरुणरूपः (उत) अपि (बभ्रुः) अस्तकाले पिंगलवर्णः (सुमंगलः) शोभनानि मंगलानि यस्य सः । सूर्योदये सर्वमंगलप्रवर्तनात् क्रमेणैतानि रूपाणि दधातीत्यभिप्रायः । अथवा असौ यस्ताम्रः अरुणः सुमंगलः प्रयोजनवशात् नानारूपाणि करोति (च) पुनः (ये) (सहस्रशः) सहस्रशः संख्याः (रुद्राः) रुद्राः (एनम्) (अभितः) सर्वतः (दिक्षु) प्राच्यादिदिक्षु (श्रिता) आश्रिताः (एषाम्) रुद्राणाम् (हेडः) अस्मदपराधजं क्रोधम् (ईमहे) भक्त्या निवारयामः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—और जो यह प्रत्यक्ष रुद्र सूर्यरूप उदयसमयमें अत्यन्त लालवर्ण, अस्तके समय रक्तवर्ण और मध्याह्न समयमें पिंगलवर्ण मंगलरूप कर्मोंका उदयमें विस्तार करनेवाले हैं, और जो सहस्रों रुद्रांशरूप वा किरणरूपसे इनके सब ओर दिशाओंमें स्थित हैं, अर्थात् जो सब सहस्रों देवता नक्षत्रमंडल इन देवताके दशों दिशाओंमें देदीप्यमान हैं इन्हींका क्रोध हम भक्तिद्वारा निवारण करते हैं ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ॥
उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

ॐ असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ७ ॥

भाष्यम्—(यः) (असौ) आदित्यरूपः (नीलग्रीवः) विषधारणेन नीला ग्रीवा कण्ठो यस्य अस्तमये नीलकण्ठ इव लक्ष्यः (उत) (विलोहितः) रक्तः (अवसर्पति) उदयास्तमयौ कुर्वन्निरन्तरं गच्छति (एनम्) रुद्रम् (गोपाः) गोपालाः वेदोक्तसंस्कारहीनाः (अदृश्रन्) पश्यन्ति (उदहार्यः) जलहारिण्यो योषित अपि (अदृश्रन्) पश्यन्ति (सः) शंकरः (दृष्टः) दृष्टः सन् (नः) अस्मान् (मृडयाति) सुखयतु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो वह विषधारणसे नीलग्रीव वा अस्तसमयमें नीलकण्ठके समान और विशेष रक्तवर्ण आदित्यरूपसे उदय अस्त करते निरन्तर गमन करते हैं, इनको वेदोक्त संस्कारहीन

गोपालतक देखते हैं, जल ले जानेवाली नारी भी दर्शन करती हैं, वह रुद्र दर्शनपथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करें । सूर्य्यमें नीलिमा आकाशकी नीलतासे कही है । गोष्ठमें गोपाल नदी आदि तीरपर पनिहारी इनकी शोभा अतिशय देखतीहैं । पक्षान्तरमें-इन्द्रियगोलकोंकी रक्षक इन्द्रियशक्ति गोप, और अमृतकी प्राप्त करनेवाली प्राणशक्ति उदकहारी हैं ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ अथो येऽअस्य सत्वानोहं तेभ्योऽकरन्नमः ॥ ८

ॐ नमोस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्-(नीलग्रीवाय) नीलकण्ठाय (सहस्राक्षाय) सहस्रमक्षीणि यस्य इन्द्रस्वरूपिणे (मीढुषे) वृष्टिकर्त्रे पर्जन्यरूपाय (नमः) नमस्कारः (अस्तु) भवतु (अथो) अपि (अस्य) रुद्रस्य (ये) (सत्वानः) प्राणिनः सेवकाः सन्ति (तेभ्यः) (अहम्) स्तुतिकर्ता (नमः) नमस्कारं (अकरम्) करोमि ॥ ८ ॥

भाषार्थ-नीलकण्ठ, सहस्रनेत्र, सब जगत्को देखनेवाले, अथवा इन्द्रस्वरूप वा बहु रश्मिरूप सेचनमें समर्थ पर्जन्यरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो । और रुद्रदेवताके जो अनुचरविशेष हैं, मेघादि राशि हैं, उनके निमित्त मैं नमस्कार करता हूँ । तात्पर्य यह-वह सबही शिवरूप हैं सबमें रुद्र वर्तमान हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ॥ याश्च ते हस्तऽइषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

ॐ प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(भगवः) हे भगवन् परमैश्वर्यसम्पन्न (धन्वनः) धनुषः (उभयोः) द्वयोः (आर्त्न्योः) कोट्योः स्थिताम् (ज्याम्) मौर्वीम् (त्वं) (प्रमुञ्च) दूरीकुरु (च) (याः) (ते) तव (हस्ते) करे (इषवः) बाणाः सन्ति (ताः) शरान् (परावप) पराक्षिप ॥ ९ ॥

भाषार्थ-हे षडैश्वर्यसम्पन्न भगवन् ! आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थित ज्याको दूर करो अर्थात् उतार दो । और जो आपके हाथमें बाण हैं उनको दूर त्यागदो हमारे निमित्त सौम्यमूर्ति हो जाओ । हमारे लिये किसी प्रकारका रोग शोक न हो यही आपसे प्रार्थना है ॥ ९ ॥

मन्त्रः ।

विज्यन्धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ २ ॥ उत ॥ अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

ॐ विज्यन्धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्-(कपर्दिनः) कपर्दो जटाजूटोऽस्यास्तीति कपर्दी तस्य रुद्रस्य (धनुः) शरासनम् (विज्यम्) मौर्वीरहितमस्तु (उत) च बाणवान् इषुधिः (विशल्यः) विफलोऽस्तु (अस्य) रुद्रस्य (याः) (इषवः) शराः ताः (अनेशन्) नश्यन्तु (अस्य) रुद्रस्य (निषंगधिः) कोशः सः (आभुः) खड्गरहितोऽस्तु । रुद्र अस्मान्प्रति न्यस्तसर्वशस्त्रोऽस्त्वित्यर्थः ॥ १० ॥

भावार्थ-जटाजूटधारी रुद्रका धनुष ज्यारहित हो, और तरकस भालेवाले बाणोंसे रीता हो, इन देवताके जो बाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हों, इनके खड्ग रखनेका कोश रीता हो अर्थात् रुद्र हमारे प्रति सर्वथा न्यस्तशस्त्र हों ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥ ११ ॥

ॐ यात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदनुष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-(मीढुष्टम) सेक्तृतम वर्षुक (ते) तव हस्ते (या) (हेतिः) धनूरूपमायुधमस्ति (ते हस्ते) करे (धनुः) धनुः (बभूव) आस्ति (तया) धनूरूपया (अयक्ष्मया) निरुपद्रवया दृढया हेत्या (विश्वतः) सर्वतः (अस्मान्) नः (परिभुज) परिपालय ॥ ११ ॥

भावार्थ-हे अत्यन्त ज्ञानामृत वा वर्षासे सींचनेवाले ! तुम्हारे हाथमें जो आयुध है, आपके हाथमें जो धनुष है उस उपद्रवरहित धनुषरूप हेतिसे आप सब ओरसे हमको पालन करो, अर्थात् आप वर्षा करनेवाले अस्त्रको ही धारण कीजिये किन्तु उससे कोई उपद्रव न हो ॥ ११ ॥

मन्त्रः।

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑।
अथो॒ यऽइ॑षु॒धिस्तवा॒रेऽ अ॒स्मन्निधे॑हि॒
तम्॥ १२॥

ॐ परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू०॥ १२॥

भाष्यम्-हे रुद्र (ते) तव (धन्वनः) धनुःसम्बन्धि (हेतिः) आयुधम् (विश्वतः) सर्वतः (अस्मान्) (परिवृणक्तु) त्यजतु (अथो) अपि च (यः) (तव) (इषुधिः) कोशोऽस्ति (तम् अस्मत्) सकाशात् (आरे) दूरे (निधेहि) स्थापय॥ १२॥

भाषार्थ-हे रुद्र! तुम्हारे धनुसंबंधी आयुध सब ओरसे हमको त्यागन करे, और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमारे निकटसे दूर स्थापन करो। आशय यह कि, हमारे कर्मों-द्वारा जो व्याधि होती हैं वह तुम्हारी सत्तासे हैं सो हमको कष्ट न दें॥ १२॥

मन्त्रः।

अ॒व॒तत्य॒ धनु॒ष्ट्वᳬ स॑हस्राक्ष॒ शते॑षुधे॥ नि॒-
शीर्य॑ श॒ल्याना॒म्मुखा॑ शि॒वो नः॑ सु॒मना॑ भ-
व॥ १३॥

ॐ अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू०॥ १३॥

भाष्यम्-(सहस्राक्ष) सहस्रमक्षीणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (शतेषुधे) शतमिषुधयो यस्य तत्सम्बुद्धौ (त्वम्) (धनुः) शरासनम् (अवतत्य अपज्यार्क कृत्वा (शल्यानाम्) शराणाम् (मुखाः) अग्राणि (निशीर्य) शीर्णानि कृत्वा (नः) अस्मान्प्रति (शिवः) शान्तः (सुमनाः) शोभनचित्तश्च (भव) अनुगृहाणेत्यर्थः॥ १३॥

भाषार्थ-हे विराट्! हे सहस्रनेत्र! हे सहस्रों तरकसवाले! तुम धनुषको ज्यारहित करो और बाणोंके मुख (भाल) निकालकर हमको शान्त, शोभनचित्त हो अर्थात् हमपर कृपा करो॥ १३॥

मन्त्रः ।

नमस्तऽआयुधायानाततायधृष्णवे ॥ उभाभ्यामुततेनमोबाहुभ्यान्तवधन्वने ॥१४॥

ॐ नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्-हे रुद्र (ते) तव (अनातताय) धनुष्यनारोपिताय (आयुधाय) बाणाय (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (धृष्णवे) धर्षणशीलाय रिपून् हन्तुं प्रगल्भाय (धन्वने) धनुषेऽपि (नमः) नतिरस्तु (उत) च (ते) तव (उभाभ्याम्) द्वाभ्याम् बाहुभ्याम्) भुजाभ्याम् (नमः) नमस्कारोऽस्तु ॥ १४ ॥

भाषार्थ-हे रुद्र ! आपके धनुषपर न चढाये हुए बाणके निमित्त नमस्कार है, आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रु मारनेमें प्रगल्भ धनुषके निमित्त नमस्कार है ॥ १४ ॥

मन्त्रः ।

मानोमहान्तमुतमानोऽअर्भकम्मानऽउक्षन्तमुतमानऽउक्षितम् ॥ मानोवधीःपितरम्मोतमातरम्मानःप्प्रियास्तन्वोरुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥

ॐ मानो महान्त इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निच्यृदार्षी जगती छन्दः । रुद्रो० दे० । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्-हे रुद्र (नः) अस्माकम् (महान्तम्) वृद्धं गुरुपितृव्यादिकम् (मावधीः) मा हिंसीः (उत) अपि (नः) अस्माकम् (अर्भकम्) बालकम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (उक्षन्तम्) सिञ्चन्तं तरुणम् (मा) मावधीः (उत) अपि (नः) अस्माकम् (उक्षितम्) सिक्तं गर्भस्थम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (पितरम्) जनकम् (मा) मावधीः (उत) अपि (नः) (मातरम्) जननीम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (प्रियाः) वल्लभा (तन्वः) पुत्रपौत्ररूपाणि शरीराणि (मा रीरिषः) मा हिंसीः ॥ १५ ॥

भाषार्थ-हे रुद्र ! हमारे वृद्ध गुरु पितृव्य आदिको कर्मानुसार मत मारो । और हमारे बालकको मत मारो, हमारे तरुणको मत मारो और हमारे गर्भस्थ बालकको मत मारो, हमारे पिताको मत मारो, और हमारी माताको मत मारो, हमारे प्यारे शरीर पुत्र पौत्र आदिको मत मारो । आशय यह कि, यदि कर्मानुसार उनकी आयु पूरी होगई हो तो भी आपकी कृपा होनी चाहिये ॥ १५ ॥

मन्त्रः ।

मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नोऽअश्वेषु रीरिषः ॥ मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ १६ ॥

ॐ मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृदार्षी जगती छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्-हे रुद्र (नः) अस्माकम् (तोके) पुत्रे (तनये) पौत्रे (मा रीरिषः) मा हिंसीः (नः आयुषि) जीवने (मा) मा हिंसीः (नः) (गोषु) धेनुषु (मा) मा हिंसीः (नः) (अश्वेषु) तुरगेषु (मा) मा हिंसीः (नः भामिनः) क्रोधयुतान् (वीरान्) भृत्यान् (मा वधीः) मा हिंसीः (हविष्मन्तः) हवियुक्ताः (सदमित्) सदैव (त्वा) (हवामहे) वयं यागायाह्वयामः । त्वदेकशरणा वयमित्यर्थः ॥ १६ ॥

भाषार्थ-हे रुद्र ! हमारे पौत्र पुत्रको मत मारो, हमारी आयुको मत नष्ट करो, हमारी गौओंमें प्रहार मत करो, हमारे घोडोंमें प्रहार मत करो, हमारे क्रोधयुक्त वीर पुरुषोंको मत मारो । हवियुक्त निरन्तर आपको हम यज्ञके निमित्त आह्वान करते हैं । अर्थात् आपकी ही शरण हैं । तात्पर्य यह है कि-ईश्वर रुद्र किसीको नहीं मारते पर कर्मानुसार रोगादिमें अपनी शक्तिकी प्रेरणा करते हैं उन पापोंसे अनिष्ट न होनेकी प्रार्थना है ॥ १६ ॥

मन्त्रः ।

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथी-

नाम्पतयेनमोनमोहरिकेशायोपवीतिनेपु-
ष्टानाम्पतयेनमोनमोबभ्लुशाय ॥ १७ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निच्यृदतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । जपे विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्-(हिरण्यवाहवे) हिरण्यमाभरणरूपं बाह्वोर्यस्य स हिरण्यबाहुः तस्मै (सेनान्ये) सेनां नयतीति सेनानीः तस्मै (नमः) रुद्राय नमः (च) (दिशांपतये) पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (हरिकेशेभ्यः) हरितवर्णाः केशाः पर्णरूपाः येषां ते हरिकेशास्तेभ्यः (वृक्षेभ्यः) वृक्षरूपरुद्रेभ्यः (नमः) नमः (पशूनाम्) जीवानाम् (पतये) पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (त्विषीमते) त्विषिर्दीप्तिरस्यास्ति तस्मै (शष्पिञ्जराय) शष्पं बालतृण तद्वत्पिञ्जराय पीतरक्तवर्णाय रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु (पथीनाम्) मार्गाणां पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (हरिकेशाय) नीलवर्णकेशाय जरारहिताय (उपवीतिने) मंगलार्थयज्ञोपवीतधारिणे रुद्राय (नमः) नतिरस्तु (पुष्टानाम्) गुणपूर्णानां नराणाम् (पतये) पालकाय स्वामिने (नमः) नमोऽस्तु ॥ १७ ॥

भाषार्थ-भुजाओंमें सुवर्ण धारण करनेवाले महाबाहु सेनापालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, दिशाओंके अधिपति अर्थात् समस्त जगत्को अपनी भुजाओंके नीचे रक्षा करनेवाले सेनापतिके निमित्त भी नमस्कार है, पर्णरूप हरे बालोंवाले वृक्षरूप रुद्रोंके निमित्त बारंवार नमस्कार है, जीवोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, कान्तिमान् बालतृणवत् पीतवर्णवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, मार्गोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, मंगलके निमित्त उपवीत धारण करनेवाले नीलवर्णकेश वा जरारहित रुद्रके निमित्त नमस्कार है, गुणपूर्ण मनुष्यके स्वामी रुद्रके निमित्त नमस्कार है ॥ १७ ॥

तात्पर्य-तात्पर्य यह-सब मार्गोंमें शान्तरूप रुद्र हैं, अश्वत्थादि वृक्षोंपर जैसे आकाश बेल आदि निर्मूल लता होती हैं तद्वत् यज्ञोपवीत धारे हैं विना रुद्रके किसीकी स्थिति नहीं होसक्ती इससे रुद्र सबके स्वामी पालक कहाते हैं ॥ १७ ॥

मन्त्रः ।

नमोबभ्लुशायव्याधिनेन्नानाम्पतयेनमो
नमोभवस्यहेत्यैजगताम्पतयेनमोनमो
रुद्रायाततायिनेक्षेत्राणाम्पतयेनमोनमः

सूतायाहन्त्यैवनानाम्पतयेनमोनमोरोहि-
ताय ॥ १८ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः। निच्यृदष्टिछन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ १८ ॥

भाष्यम्-(बभ्लुशाय) कपिलवर्णाय यद्वा-विभर्ति रुद्रमिति बभ्लुर्वृषभस्तस्मिन् शेते स बभ्लुशस्तस्मै रुद्राय (नमः) नमः (व्याधिने) विध्यति शत्रूनिति व्याधी तस्मै रुद्राय नमः (अन्नानाम्) धान्यानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (भवस्य) संसारस्य (हेत्यै) आयुधाय संसारनिवर्तकाय रुद्राय (नमः) नतिरस्तु (जगतां पतये) पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (आततायिने) आततेन विस्तृतेन धनुषा सह एति गच्छतीति आततायी उद्यतायुधस्तस्मै रुद्राय (नमः) नमः (क्षेत्राणाम्) देहानाम् (पतये) रक्षकाय पालकाय (नमः) नमः (अहन्त्रे) न हन्तीति अहन्ति-तस्मै (सूताय) सारथये तद्रूपाय (नमः) नमः (वनानाम्) अरण्यानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु ॥ १८ ॥

भाषार्थ-कपिलवर्ण वा वृषभपर स्थित होनेवाले शत्रुओंको वेधनेवाले व्याधिरूप रुद्रको नमस्कार है। अन्नोंके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, संसारके आयुध अर्थात् संसारनिवर्तक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, संसारके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है उद्यत आयुधवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, देहोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, नहीं मारनेवाले, पापसे रक्षक प्रधान सारथिरूपके निमित्त नमस्कार है, वनोंके पालकके निमित्त नमस्कार है ॥ १८ ॥

विवरण-रोगियोंका रक्तह्रास होनेपर जो वर्ण होताहै उसको बभ्लुश कहते हैं ॥ १८ ॥

मन्त्रः।

नमोरोहितायस्थपतयेवृक्षाणाम्पतयेनमोन-
मोभुवन्तयेवारिवस्कृतायौषधीनाम्पतयेन-
मोनमो मन्त्रिणेवाणिजायकक्षाणाम्पतये
नमोनमऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीना-
म्पतयेनमोनमः कृत्स्नाय ॥ १९ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः । विराडतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । जपे विनियोगः ॥ १९ ॥

भाष्यम्-(रोहिताय) लोहितवर्णाय (स्थपतये) स्थपतिर्गृहादिकर्ता विश्वकर्म-रूपेण तस्मै (नमः) नातिरस्तु (वृक्षाणाम्) तरूणाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (भुवन्तये) भूमण्डलविस्तारकारिणे (वारिवस्कृताय) स्थानभोग्यकराय (नमः) नमोऽस्तु (ओषधीनाम्) ग्राम्यारण्यानामोषधीनाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (मंत्रिणे) सचिवरूपिणे (वाणिजाय) व्यापारकर्त्रे रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु (कक्षाणाम्) वनोत्पन्ना गुल्मवीरुधादयः कक्षास्तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (उच्चैः घोषाय) युद्धे महाशब्दाय (आक्रन्दयते) रिपुरोदकाय (नमः) नमोऽस्तु (पत्तीनाम्) पदातीनाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु ॥ १९ ॥

भाषार्थ-लोहितवर्ण गृहादिकर्ता विश्वकर्मरूपके निमित्त नमस्कार है, वृक्षोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, भूमंडलके विस्तार करनेवाले स्थान भोग्य करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, ग्राम्य और आरण्य ओषधियोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, आलोचनमें कुशल व्यापारकर्ताओंके रूपमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, वनके गुल्मवीरुधादिके पालकके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंको रुलानेवाले, युद्धमें बड़ा उग्र शब्द करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े, पांच पैदलका नाम पत्ति है । इस प्रकार सेना-विशेषके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है ॥ १९ ॥

विशेष-स्थपति-शब्दसे गृहआदि निर्माण करनेवाले इनके मनमें सदा ही इष्टकाकी चिन्ता लगीरहतीहै, इस कारण इनका अन्तरदेवता लोहितवर्ण कहाहै, कारण कि इष्टका लाल होती है ॥ १९ ॥

मन्त्रः ।

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वानाम्पतये
नमः सहमानाय निव्याधिनऽआव्याधिनी-
नाम्पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्ते-
नानाम्पतये नमो नमो निचेरवे परिचराया-
रण्यानाम्पतये नमो नमो वञ्चते ॥ २० ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः अतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २० ॥

भाष्यम्-(कृत्स्नायतया) कृत्स्नं समग्रमायतं विस्तृतम् अर्थाद्धनुर्यस्य स कृत्स्नायतस्तस्य भावः कृत्स्नायतता तया आकर्णपूर्णधनुष्ट्वेन (धावते) युद्धे शीघ्रं गच्छते रुद्राय (नमः) नतिरस्तु । अथवा कृत्स्नः सर्व आयो लाभो यस्य सः कृत्स्नायस्तस्य भावः कृत्स्नायता तया (धावते) सर्वलाभप्रापकत्वेन धावते (सत्वानाम्) शरणागतानां प्राणिनाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (सहमानाय) अभिभवनशीलाय (निव्याधिने) नितरां विध्यति हन्ति शत्रूनिति निव्याधी तस्मै (नमः) नमः (आव्याधिनीनाम्) आ समन्ताद्विध्यन्तीत्याव्याधिन्यः शूरसेनास्तासाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (निषङ्गिणे) खड्गयुक्ताय (ककुभाय) महते रुद्राय नमः (स्तेनानाम्) गुप्तचोराणाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (निचेरवे) नितरां चेरुः निचेरुः तस्मै (परिचराय) परितः चरतीति परिचरस्तस्मै (नमः) नमः (अरण्यानाम्) वनानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नतिरस्तु ॥ २० ॥

भाषार्थ-जो हमारी रक्षाके निमित्त कर्णपर्यन्त धनुष खैंचकर धावमान होते हैं, उन रुद्रके निमित्त नमस्कार है, अथवा सब लाभ प्राप्त करानेवालेके निमित्त नमस्कार है, शरणमें आये हुए प्राणियोंके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले, शत्रुओंको अधिक मारनेवालेके निमित्त नमस्कार है, सब प्रकारसे प्रहार करनेवाली शूरसेनाओंके पालकके निमित्त नमस्कार है, उपद्रवकारियोंपर खड्ग चलानेवाले महान् रुद्रके निमित्त नमस्कार है, गुप्तधनहारी जनोंके सब रूप होनेसे पालन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, अपहारकी बुद्धिसे निरन्तर फिरनेवाले तथा आपणस्थानमें हरणकी इच्छासे फिरनेवालों (गठकटों) के अन्तर्यामीके निमित्त नमस्कार है, वनोंके पालन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ २० ॥

विवरण-जगत्भरमें सर्वात्मा रुद्र हैं, इस कारणसे स्तेनादि भी रुद्ररूप लिखेहैं, स्तेनादिके शरीरमें जीव ईश्वर इन दो रूपोंसे ईश्वर स्थित हैं, जीवरूप स्तेनादिशब्दवाच्य है, ईश्वर रुद्ररूपसे लक्षित है-जैसे शाखाके अग्रसे चन्द्रमाको दिखाते हैं इस प्रकार लक्ष्यार्थकी विवक्षासे मन्त्रोंमें लौकिकशब्द लिखे हैं ॥ २० ॥

मन्त्रः ।

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनाम्पतये नमो नमो निषङ्गिण ऽइषुधिमते तस्कराणाम्पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाᳬसद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमो नमो सिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानाम्पतये नमः ॥ २१ ॥

ॐ नमोवञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निच्यृदतिधृतिश्छंदः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्–(वञ्चते) वञ्चति प्रतारयति तस्मै, वा गमनशीलाय रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु (परिवञ्चते) सर्वतो गमनशीलाय वा सर्वव्यवहारे धनापह्नवः परिवञ्चनम् । गुप्तचौरा द्विविधाः–रात्रौ वेश्मनि खातादिना द्रव्यहर्तारः स्वीया एवाऽहर्निशं ज्ञातारो हर्तारश्च पूर्वे स्तेना उत्तरे स्तायवः तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (निषङ्गिणे) खड्गिने (इषुधिमते) इषुधिस्तूणस्तत्सहिताय (नमः) नमोऽस्तु (तस्कराणाम्) प्रकटचौराणाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (सृकायिभ्यः) सृकेण वज्रेण सह यन्ति गच्छन्तीत्येवंशीलाः सृकायिणः तेभ्यः (जिघांसद्भ्यः) हन्तुमिच्छद्भ्यः तेभ्यो रुद्रेभ्यः (नमः) नमोस्तु (मुष्णताम्) क्षेत्रादिषु धान्यान्यपहर्तारो मुष्णन्तस्तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु (असिमद्भ्यः) असियुक्तेभ्यः (नक्तञ्चरद्भ्यः) रात्रौ गच्छद्भ्यः रुद्रेभ्यः (नमः) नमोस्तु (विकृन्तानां) विकर्तनशीलानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु ॥ २१ ॥

भाषार्थ–ठगोंके अन्तर्यामीके निमित्त,स्वामीको अपना विश्वास दिलाकर व्यवहारमें उनका वंचन करनेवालोंके साक्षीके निमित्त नमस्कार है, गुप्तचोरोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, खड्गधारी, बाणधारीके अर्थात्–उपद्रव करनेवालेके शान्त करनेवालोंके निमित्त नमस्कार है, प्रकाश चोरोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, वज्र लेकर चलनेवाले हत्याकारी जनोंके अन्तर्यामी वा उनके रूप रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, क्षेत्रआदिसे धनादिके हरण करनेवालोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, खड्गधारी रात्रिमें फिरनेवाले दस्युगणोंके हृदयमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, छेदन करके पराया धन हरनेवाले दस्युगणके पालनकरनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ २१ ॥

मन्त्रः ।

नमऽउष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानाम्प–
तये नमो नमऽइषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो
नमो नमऽआतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्य–
श्च वो नमो नमऽआयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो
नमो नमो विसृजद्भ्यः ॥ २२ ॥

ॐ नम उष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। निचृदष्टिश्छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्-(उष्णीषिणे) उष्णीषं शिरोवेष्टनमस्यास्तीत्युष्णीषी तस्मै (गिरिचराय) गिरौ चरति पर्वतसंचारिणे (नमः) नमोऽस्तु (कुलुञ्चानाम्) कुं भूमिं क्षेत्रगृहादिरूपां लुञ्चन्ति हरन्ति कुलुञ्चाः तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (इषुमद्भ्यः) जनान् भीषयितुं बाणधारिणस्तेभ्यो रुद्रेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) अपि (धन्वायिभ्यः) हे रुद्राः धनुर्धारिभ्यः (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु (आतन्वानेभ्यः) आतन्वन्त्यारोपयन्ति ज्यां धनुषीत्यातन्वानास्तद्रूपेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) अपि (प्रतिदधानेभ्यः) प्रतिदधते सन्दधते बाणं धनुषीति सन्दधानास्तेभ्यः (वो) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु (आयच्छद्भ्यः) आयच्छन्त्याकर्षन्ति धनूंषि ते आयच्छन्तस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) अपि (अस्यद्भ्यः) अस्यन्ति क्षिपन्ति बाणानित्यस्यन्तस्तेभ्यः (वः) युष्मद्भ्यः (नमः) नमोऽस्तु ॥ २२ ॥

भाषार्थ-उष्णीष (पगडी) धारण करनेवाले सभ्यगण ग्रामोंमें विचरनेवाले, शून्यमस्तक गिरि वनमें फिरनेवाले दोनों प्रकार वृक्षोंके हृदयमें स्थित रुद्रके निमित्त नमस्कार है, छल बल कौशलसे दूसरोंकी गृह भूमि आदि हरण करनेवालोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, मनुष्योंके डरानेको बाण धारण करनेवाले और धनुष साथ लेकर चलानेवाले वा कुलुञ्चगणोंके दमनार्थ बाणधारी आप रुद्रके निमित्त नमस्कार है, कुलुंचोंके दमनार्थ धनुषपर ज्या आरोपण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और धनुषपर बाण चढानेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, कुलुंचोंके दमनके निमित्त धनुषको आकर्षण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और बाणोंके निक्षेप करनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २२ ॥

मंत्रः।

नमो॑ विसृजद्भ्यो॒ विध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स्वप॒द्भ्यो जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॒ शया॑नेभ्य॒ऽआसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स॒भाभ्यः॑ ॥ २३ ॥

ॐ नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। निचृदतिजगती छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ २३ ॥

भाष्यम्-(विसृजद्भ्यः) विमुञ्चन्ति बाणानरीणिति विसृजन्तः तेभ्यः (नमः) (च) अपि (विध्यद्भ्यः) शत्रून् ताडयद्भ्यः (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु (स्वपद्भ्यः) स्वप्नावस्थामनुभवद्भ्यः (जाग्रद्भ्यश्च) जाग्रदवस्थावन्तस्तेभ्यो (वः) युष्माकम् नमोऽस्तु (शयानेभ्यः) सुषुप्त्यवस्थावद्भ्यः (च आसीनेभ्यः) आसते ते आसीनाः तेभ्यश्च (वो नमः) नमोऽस्तु (तिष्ठद्भ्यः) स्थितिं कुर्वद्भ्यः (नमः) नमोऽस्तु (धावद्भ्यः) धावन्ति ते धावन्तो वेगवद्गतयस्तेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु सर्वाद्वैतप्रतिपादनाय स्तुतिः ॥ २३ ॥

भाषार्थ-पापियोंके दमनार्थ बाण त्यागनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और शत्रुओंके लक्ष्य बेधनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, और जाग्रत् अवस्थाके अनुभवी आपके निमित्त नमस्कार है, सुषुप्तिअवस्थावालोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, बैठेहुओंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, वेगवान्गतिवालोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है ॥ १३ ॥

मन्त्रः ।

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो
नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमऽ-
आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो
नमो नमऽउगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो
नमो नमो गणेभ्यः ॥ २४ ॥

ॐ नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । शक्वरी छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २४ ॥

भाष्यम्-(सभाभ्यः) सभारूपेभ्यः रुद्रेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च सभापतिभ्यः) सभायाः पतिभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु सभादिषु रुद्रदृष्टिः कर्तव्येति तात्पर्यम् । (अश्वेभ्यः) अश्वास्तुरगास्तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (अश्वपतिभ्यः) अश्वानां पतिभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (आव्याधिनीभ्यः) आविध्यन्तीत्याव्याधिन्यः सेनास्ताभ्यः (नमः) नमः (च) अपि (विविध्यन्तीभ्यः) विशेषेण विध्यन्तीति विविध्यन्त्यः ताभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (उगणाय) उत्कृष्टा गणाः भृत्यसमूहाः यासां ताः उगणा ब्राह्म्यादयः मातरस्ताभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) अपि (तृꣳहतीभ्यः) हन्तुं समर्थाः दुर्गादयस्ताभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु ॥ २४ ॥

भावार्थ—अब वातसंज्ञक रुद्र जो रुद्रलोकमें निवास करतेहैं, अद्वैतप्रतिपादनके निमित्त उनका वर्णन करतेहैं—सभारूप रुद्रके निमित्त नमस्कार है, सभाआदिमें रुद्रदृष्टि करनी चाहिये । और सभापतिरूप आपके निमित्त नमस्कार है, प्रत्येक अश्वोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, और अश्वोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्कार है, देवसेनाओंमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, और विशेषकर वेधनेवाली देवसेनाओंमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, उत्कृष्ट भृत्यसमूहवाली ब्राह्मीआदि माता वा सेनामें स्थित रुद्रके निमित्त नमस्कार है, और युद्धमें प्रहार करनेवाले दुर्गादिमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है॥२४॥

मन्त्रः ।

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ सेना॑भ्यः ॥ २५ ॥

ॐ नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिक्छक्करी छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २५ ॥

भाष्यम्—(गणेभ्यः) गणाः समूहः तत्स्वरूपेभ्यः (नमः) नमः, (गणपतिभ्यश्च) गणपालकास्तेभ्यश्च (वो नमः) नमस्कारः, (व्रातेभ्यः) नानाजातीयानां संघास्तेभ्यः (नमः) नमः (च) (व्रातपतिभ्यः) व्रातपालकास्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (गृत्सेभ्यः) गृत्सा मेधाविनस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) गृत्सपतयस्तत्पालकास्तेभ्यः (वः) युष्माकम् (नमः) नमः (विरूपेभ्यः) नग्नमुण्डजटिलादयस्तेभ्यः (नमः) नमः (विश्वरूपेभ्यः) नानाविधं रूपं येषांते विश्वरूपास्तुरङ्गवदनहयग्रीवादयस्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः ॥ २५ ॥

भावार्थ—देवानुचर भूतविशेषोंके निमित्त नमस्कार है, गणोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्कार है, विशेष गण अथवा अनेकजातियोंके समूहके निमित्त नमस्कार है, व्रातगणोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्कार है, बुद्धिमानोंके अथवा विषयलंपटके निमित्त नमस्कार और बुद्धिमानोंके रक्षक आपके निमित्त नमस्कार है, नग्न—मुण्ड—जटिलादि—विकृतरूपके निमित्त वा विविधरूपवालोंके निमित्त नमस्कार है, सर्वरूप नानाविधरूप वा तुरंगवदन हयग्रीवादिरूप आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २५ ॥

मन्त्रः ।

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽअरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

ॐ नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगतिजगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २६ ॥

भाष्यम्–(सेनाभ्यः) चमूस्वरूपेभ्यः (नमः) नमः (च) (सेनानिभ्यः) सेनान्नयन्तीति सेनान्यः तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (रथिभ्यः) रथा येषां ते रथिनस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) (अरथेभ्यः) रथवर्जिता योद्धारस्तेभ्यः (वो नमः) नमः । (क्षत्तृभ्यः) रथानामधिष्ठातारस्तेभ्यः (नमः) (च) (संग्रहीतृभ्यः) संग्रहीतारः सारथयस्तेभ्यः (वो नमः) नमः (महद्भ्यः) जातिविद्यादिभिरुत्कृष्टास्तेभ्यः (च) (अर्भकेभ्यः) प्रमाणादिभिरल्पास्तेभ्यः (वो नमः) नमः ॥ २६ ॥

भाषार्थ–सेनारूपके निमित्त नमस्कार है, सेनापतिरूप आपके निमित्त नमस्कार है, प्रशंसित रथवालोंके निमित्त नमस्कार है, रथहीन आपके निमित्त नमस्कार है, रथके अधिष्ठातृके अन्तरमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, और सारथियोंके अन्तरमें स्थित वा रणसामग्रीग्रहणकर्ता आपके निमित्त नमस्कार है, जाति, विद्या और ऐश्वर्यमें उत्कृष्ट पूज्यरूपके निमित्त नमस्कार है, प्रमाणादि अल्परूप आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २६ ॥

मन्त्रः ।

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमो नमः श्वभ्यः ॥ २७ ॥

ॐ नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृच्छकरी छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २७ ॥

भाष्यम्–(तक्षभ्यः) तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) (रथकारेभ्यः) रथं कुर्वन्तीति रथकारास्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (कुलालेभ्यः) कुम्भकारेभ्यः (नमः) नमः (च) कर्मारेभ्यः लोहकारेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (निषादेभ्यः) भिल्लेभ्यः (नमः) नमः (च) (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुक्कसादिभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (श्वनिभ्यः) शुनो नयन्तीति श्वन्यस्तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) (मृगयुभ्यः) मृगान् कामयन्त इति लुब्धकास्तेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु ॥ २७ ॥

भाषार्थ–काष्ठकी शिल्पविद्याके जाननेवालोंमें व्याप्तके निमित्त नमस्कार, और विमान रथ निर्माणकारी उत्कृष्ट तक्षाके अन्तरमें स्थित आपको नमस्कार है, प्रशंसित मृत्तिकाके पात्र बनानेवालोंमें स्थितके निमित्त नमस्कार, और लोहेके शस्त्र बनानेवालोंमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, गिरिचारी भीलआदिमें स्थित रुद्रके निमित्त नमस्कार, और पक्षिघातक पुल्कस आदि वा संकीर्णजातियोंके अन्तरमें स्थित व्याप्त आपके निमित्त नमस्कार है, कुत्तोंके गलेमें रस्सी बाँधकर धारण करनेवालोंके अन्तरको जाननेवालेके निमित्त नमस्कार है, मृगोंकी कामनावाले व्याधोंके अन्तर स्थित आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥

मन्त्रः ।

नमः॑ श्वभ्यः॒ श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒-
वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नमः॑ श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒
नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च॒ नमः॑
कप॒र्हिने॑ ॥ २८ ॥

ॐ नमः श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी जगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २८ ॥

भाष्यम्–(श्वभ्यः) कुक्कुररूपेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्वपतिभ्यः) श्वपालकेभ्यः (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु इत उत्तरं रुद्रनामानि (च) (भवाय) भवन्ति उत्पद्यन्ते जन्तवोऽस्मादिति भवस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च रुद्राय) रु दुःखं द्रावयति रुद्रस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (शर्वाय) पापहारिणे (नमः) नमोऽस्तु (च) (पशुपतये) जीवानां पालकाय वा अज्ञान् पाति रक्षतीति पशुपतिस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (नीलग्रीवाय) नीला श्यामा ग्रीवा यस्य स

तस्मै (शितिकण्ठाय) शितिः श्वेतः कण्ठो नीलातिरिक्तभागो यस्य शितिकण्ठस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ २८ ॥

भाषार्थ–कुकुरोंके अन्तरमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, कुकुरोंके अधिपति किरातोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, (यह पूजावाचक वः–शब्द है, उभयतो नमस्कारवाले मंत्र पूर्ण हुए। अब नमस्कारोपक्रम मंत्र लिखते हैं) और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होता है उनके निमित्त नमस्कार है, दुःख दूर करनेवाले देवके निमित्त नमस्कार है और पापके नाश करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, प्राणियोंके अधिपतिके निमित्त नमस्कार है, नीलवर्णग्रीवावाले अथवा नीलवर्ण आकाशमें उदित सूर्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, नीलकण्ठवाले वा मेघरहित आकाशमें उदित हुए सूर्यके अन्तरमें स्थितके निमित्त नमस्कार है ॥ २८ ॥

मन्त्रः ।

नमः॑ कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नमः॑ सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च ॥ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च॒ नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ ॥ २९ ॥

ॐ नमः कपर्दिने इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगतिजगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २९ ॥

भाष्यम्–(कपर्दिने) जटाजूटधारिणे (नमः) नमोऽस्तु (च) (व्युप्तकेशाय) मुण्डितकेशाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (सहस्राक्षाय) बहुनेत्राय (च) (शतधन्वने) बहुधन्वने (नमः) नमोऽस्तु (च) (गिरिशयाय) गिरौ शेते गिरिशयस्तस्मै (च) (शिपिविष्टाय) विष्णुरूपाय यद्वा–शिपिषु पशुषु विष्टः प्रविष्टः' 'पशवो वै शिपिः' इति श्रुतेः (च) (मीढुष्टमाय) सेक्तृतमाय यूने परिणामहीनाय (च) (इषुमते) शरयुक्ताय (नमः) नमोऽस्तु ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जटाजूटधारीके निमित्त भी नमस्कार है, मुण्डितकेशके निमित्त नमस्कार है और सहस्रलोचन इन्द्ररूपके निमित्त नमस्कार है, बहुत धनुष धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार और सबप्राणियोंके अन्तर व्यापक विष्णुरूपके निमित्त नमस्कार है, ("विष्णुः शिपिविष्टः" इति श्रुतेः । अथवा पशवो वै शिपिः इति श्रुतेः) बहुगणोंमें व्याप्तके निमित्त नमस्कार है, (अथवा यज्ञो वै शिपिः) यज्ञमें अधिष्ठातृदेवतारूपसे प्रविष्ट अथवा शिपिः

आदित्यमंडलमें स्थित ("शिपयोऽत्र रश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवति" इति) के निमित्त नमस्कार है। और तृप्तिकर्त्ता मेघरूपसे तृप्तिकर्ता वा चार पदार्थोंकी वर्षा करनेवालेके निमित्त और बाणधारीके निमित्त नमस्कार है ॥ २९ ॥

मन्त्रः ।

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च नम आशवे ॥ ३० ॥

ॐ नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३० ॥

भाष्यम्-(ह्रस्वाय) टघुप्रमाणकः ह्रस्वः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वामनाय) संकुचितावयवाय (च) (बृहते) बृहन् प्रौढाङ्गस्तस्मै (च) (वर्षीयसे) वर्षीयानतिशयेन वृद्धस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वृद्धाय) वृद्धो वयसाधिकस्तस्मै (च) (सवृधे) वर्धन्ते विद्याविनयादिगुणैस्ते वृधः पण्डिताः क्विप् तैः सह वर्तत इति सवृत् तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (अग्र्याय) जगतामग्रे भवः अग्र्यस्तस्मै (च) (प्रथमाय) मुख्याय (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३० ॥

भाषार्थ-स्वल्पशरीरके निमित्तभी नमस्कार है। और संकुचित अवयवसे व्याप्तके निमित्त नमस्कार है, प्रौढाङ्गके निमित्त नमस्कार है, अतिवृद्धिके निमित्त नमस्कार है, अवस्थामें अधिकके निमित्त नमस्कार है, विद्या विनय आदि गुणयुक्त पंडितोंके साथ वर्तनेवाले युवाके निमित्त नमस्कार है। और मुख्य सब जगत्में प्रादुर्भाव होनेवालेके निमित्त नमस्कार है सबमें प्रथम मुख्यके निमित्त नमस्कार है ॥ ३० ॥

विशेष-आशय यह कि, जब सृष्टि नहीं थी तब आप थे, आप सबसे प्रथम और अग्र्य कहे जाते हैं आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

मन्त्रः ।

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

ॐ नम आशव इत्यस्य कुत्स ऋषिः स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३१ ॥

भाष्यम्-(आशवे) जगद्व्यापिने (च) (अजिराय) गतिशीलाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (शीघ्र्याय) वेगवद्वस्तुनि भवः शीघ्र्यः तस्मै (च) (शीभ्याय) शीभ्यते कत्थते इति शीभ आत्मश्लाघी पचाद्यच् तत्र भव इति छान्दसो यत्प्रत्ययः । शीभो जलप्रवाहो वा शीभाक्षिप्तो वा तत्र भवाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (ऊर्म्याय) कल्लोलेषु भवः ऊर्म्यः तस्मै (च) (अवस्वन्याय) अर्वाचीनं गच्छन् उदकस्य स्वनो ध्वनिः अवस्वनः तत्र भवाय (नमः) नमः (च) (नादेयाय) नद्यां भवो नादेयस्तस्मै (च) (द्वीप्याय) द्वीपे भवो द्वीप्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३१ ॥

भाषार्थ-जगत्-व्यापकके निमित्तभी नमस्कार है, गतिशीलके निमित्त, सर्वत्र व्याप्तके निमित्त नमस्कार है, और वेगवाली वस्तुओंमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान आत्मश्लाघी वा आत्मारूपके निमित्त नमस्कार है, जलतरंगमें होनेवाले और स्थिरजलोंमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, नदीमें होनेवालेके निमित्त और द्वीप अर्थात् टापूमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३१ ॥

गूढार्थ-प्राणोंके पुष्ट करनेवाले अन्तःकरणचतुष्टयके पुष्ट करनेवाले शीघ्रगमनादि सुखकी प्राप्तिकी लहरें, शब्दादिका सुनना, शब्द करना, इत्यादि शक्तियोंके दाता आपको नमस्कार है, द्वीप द्वीपान्तरोंकी शक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

मन्त्रः ।

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नमः॑ पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्याय॑ च॒ बुध्न्या॑य च॒ नमः॑ सो॒भ्याय॑ ॥ ३२ ॥

ॐ नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३२ ॥

भाष्यम्-(ज्येष्ठाय) अत्यन्तं प्रशस्यो ज्येष्ठस्तस्मै (च) (कनिष्ठाय) अत्यन्त युवाऽल्पो वा कनिष्ठस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (पूर्वजाय) पूर्वं जगदादौ हिरण्यगर्भरूपेणोत्पन्नः पूर्वजस्तस्मै (च) (अपरजाय) अपरस्मिन्काले प्रलये कालाग्निरूपेण जातः अपरजस्तस्मै (नमः) नमः (च) (मध्यमाय) मध्ये भवो

ल्भ्यमस्तस्मै देवातिर्यगादिरूपिणे (अपगल्भाय) अव्युत्पन्नेन्द्रियरूपाय, वा एक-कर्मान्तरितोऽपगल्भस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (जघन्याय) जघनं गवादीनां पश्चाद्भागस्तत्र भवो जघन्यस्तस्मै (च) (बुध्न्याय) बुध्ने वृक्षादिमूले भवो बुध्न्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३२ ॥

भाषार्थ–अतिप्रशस्य ज्येष्ठरूपके निमित्त और अतियुवा वा कनिष्ठरूपके निमित्त नमस्कार है, (अर्थात् सृष्टिके आरम्भमें जो प्रथम उत्पन्न हुआ तिसके अन्तरमें भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ होरहाहै उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होनेसे ज्येष्ठकनिष्ठरूप है) और जगत्की आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे उत्पन्न और प्रलयकालमें कालाग्निरूपसे होनेवालेके निमित्त नमस्कार है । और सृष्टिसंहारके अनन्तर देवतिर्यगादिरूपसे होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, (अर्थात् प्रथम गर्भाधानमें बालकके रक्षकरूपसे उस बालकके आत्माका आत्मा होकर गर्भमें वास करके उस बालकके साथ ही उत्पन्न होताहै. तिसके उपरान्त गर्भाधानमें भी और गर्भमें भी इसी प्रकार इसको प्रथम द्वितीय तथा संपूर्ण ही सन्तान कहा जाताहै) और अप्रगल्भ अव्युत्पन्न इंद्रिय प्रकाशरहित अण्डरूपके निमित्त नमस्कार और गवादिके पश्चाद्भागमें होनेवाले स्वेदज कृमि कीटआदिमें वर्तमानके निमित्त नमस्कार है, तथा वृक्षादिके मूलमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३२ ॥

विशेष–यह अवयवविधायक नमस्कार है ॥ ३२ ॥

मन्त्रः ।

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम ऽउर्वर्याय च खल्याय च नमो वन्याय ॥ ३३ ॥

ॐ नमः सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३३ ॥

भाष्यम्–(सोभ्याय) सोभं गन्धर्वनगरं तत्र भवस्तस्मै यद्वा–सोभ्यः उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितः मनुष्यलोकस्तत्र भवः सोभ्यस्तस्मै (च) (प्रतिसर्याय) प्रतिसरो विवाहोचितं हस्तसूत्रमभिचारो वा तत्र भवस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (याम्याय) पापिनां नरकार्तिदाता तस्मै (च) (क्षेम्याय) क्षेमे कुशले भवः क्षेम्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्लोक्याय) श्लोका वैदिकमंत्रा यशो वा तत्र भवः श्लोक्यस्तस्मै (च) (अवसान्याय) अवसानं समाप्तिर्वेदान्तो वा तत्र भवः तस्मै (नमः)

नमोऽस्तु (च) (उर्वर्य्याय) उर्वरा सर्वसस्याढ्या भूमिस्तत्र धान्यरूपेण भवस्तस्मै (च) (खल्याय) खले धान्यविवेचनदेशस्तत्र भवस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु॥३३॥

भाषार्थ–गन्धर्वनगरमें होनेवाले अथवा पुण्यपापत्वाइति वर्तमान मनुष्यलोकमें होनेवाले ("पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यां मनुष्यलोकम्" इति) अथवा पृथिवीलोकमें उत्पन्न होनेके समय जन्मे बालकके अन्तर देवतारूपके निमित्त भी नमस्कार है, और विवाहादिकार्यमें हाथमें बँधे मंगलसूत्रमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है । और पापियोंको दुःख देनेको यमसे वर्तमान और कुशलमें होनेवाले वा परलोक गये हुए प्राणीके कल्याणमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, और इस संसारमें यशप्रचारके कारणभूत वा वैदिक मंत्ररूपी यशमें होनेवालेको और वेदान्तमें स्थित वा जिसके प्रसादसे प्राणी जन्ममृत्युसे छुटकारा पाताहै उसके निमित्त नमस्कार है, उपजाऊ भूमिमें उत्पन्न हुए धान्यादिके अन्तरमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है और धान्यविवेचन देशमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३३ ॥

मन्त्रः ।

नमो व्वन्न्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम ऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च नमो बिल्मिने ॥ ३४ ॥

ॐ नमो वन्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ३४ ॥

भाष्यम्–(वन्याय) वने वृक्षादिरूपेण भवो वन्यस्तस्मै (च) (नमः) नमोऽस्तु (च) (कक्ष्याय) कक्षं तृणं वल्ली वा तत्र भवः कक्ष्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्रवाय) शब्दरूपाय (च) प्रतिश्रवाय) प्रतिशब्दरूपाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (आशुषेणाय) आशु शीघ्रा सेना यस्य सः तस्मै (च) (आशुरथाय) शीघ्रो रथो यस्य सः आशुरथस्तस्मै (नमः) नमः (च) (शूराय) युद्धधीराय (च) (अवभेदिने) अवभेदी अर्वाचीनं भर्तुं शीलमस्येति अवभेदी तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–वनमें वृक्षादिरूपसे होनेवालेके निमित्त वा घरमें विद्यमानको भी नमस्कार है, और तृणवल्लीमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, शब्दरूप वा ध्वनिमें वर्तमानके निमित्त नमस्कार है, और प्रतिध्वनिमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, शीघ्र चलनेवाली सेनाके

श्रेणीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, और शीघ्र चलनेवाले रथोंकी श्रेणीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, युद्धविशारदोंके हृदयमें विद्यमानके निमित्त, और शत्रुका हृदय वेधनशील शस्त्रमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है ॥ ३४ ॥

मन्त्रः।

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒ नमः॑ श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या॑य चाहन॒न्या॑य च॒ नमो॑ धृ॒ष्णवे॑ ॥ ३५ ॥

ॐ नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः। स्वराडार्षी। त्रिष्टुप् छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ ३५ ॥

भाष्यम्—(बिल्मिने) बिल्ममस्यास्तीति बिल्मी, बिल्मं शिरस्त्राणमस्यास्तीति बिल्मी तस्मै (च) (कवचिने) पटस्यूतं कार्पासगर्भं देहरक्षकं कवचं तदस्यास्तीति तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वर्मिणे) लोहमयं शरीररक्षकं वर्म तदस्यास्तीति तस्मै (च) (वरूथिने) वरूथः रथगुप्तिर्वा सोऽस्यास्तीति वरूथी तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्रुताय) प्रसिद्धाय (च) (श्रुतसेनाय) श्रुता प्रसिद्धा सेना यस्य स श्रुतसेनः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (दुन्दुभ्याय) दुन्दुभौ भवः दुन्दुभ्यस्तस्मै (च) (आहनन्याय) आहनने भवः आहनन्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—शिरस्त्राण धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, वा बेलपत्र धारणसे प्रसन्न होनेवालेके निमित्त नमस्कार है। और देहावरण स्थूल अंगरखा कवच धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, बख्तर धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, रथका गोपनस्थान वा हाथीके ऊपरकी अम्बारीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है। और प्रसिद्धके निमित्त नमस्कार है, प्रसिद्धसेनावालेके निमित्त भी नमस्कार है। और रणके बाजेमें विद्यमानके निमित्त और वाद्यसाधनदण्डआदिमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—यह संसार बिल्वके तुल्य है, इसमें जलके तुल्य आपकी शीतल वेदवाणी है, आप कवचके समान मायासे ऐसे ढकेहैं जिस प्रकार शरीर बख्तरसे आच्छादित होता है, सद्गुण सत्यविज्ञान धनादिसेनारूप हैं, जिससे पापादि शत्रु भागते हैं. आपका यश वेदादिमें बहुत प्रकारसे सुना है, इसीसे वेदको श्रुति कहते हैं वही दोषरूपी शत्रुके निवारण करनेकी सेना है, उसके शब्द दुन्दुभी हैं, जिस सेनासे पापादिशत्रुओंका हनन होताहै ऐसे आपके निमित्त नमस्कार है ॥ ३५ ॥

मन्त्रः ।

नमो॑धृष्ण॒वे॑च॒प्रमृ॒शाय॑च॒नमो॑निष॒ङ्गिणे॑चे॒षुधि॒मते॑च॒नम॑स्ती॒क्ष्णेष॑वे चायु॒धिने॑च॒नमः॑ स्वायु॒धाय॑च सु॒धन्व॑ने च ॥ ३६ ॥

ॐ नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ३६ ॥

भाष्यम्–(च) (धृष्णवे) धृष्णुः प्रगल्भः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (प्रमृशाय) पंडिताय नमः (च) (निषङ्गिणे) खड्गयुताय (च) (इषुधिमते) तूणयुताय (नमः) नमोऽस्तु (च) (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्णा असह्या इषवो बाणा यस्य सः तीक्ष्णेषुस्तस्मै (च) (आयुधिने) आयुधधारिण (नमः) नमोऽस्तु (च) (स्वायुधाय) शोभनायुधाय (च) (सुधन्वने) शोभनधनुषे (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३६ ॥

भाषार्थ–प्रगल्भरूप अपने पक्षकी रक्षा करनेवालेके निमित्त नमस्कार है; विचारशील पंडितरूप वा विपक्षदलन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है । और खड्गधारीके निमित्त नमस्कार है, तरकसयुक्तके निमित्त नमस्कार है; तीक्ष्णबाणधारीके निमित्त और मुद्गरादि आयुध धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, शोभन आयुध, त्रिशूल, लोह, शिलादि धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है । और पिनाक श्रेष्ठधनुषधारीके निमित्त नमस्कार है ॥ ३६ ॥

मन्त्रः ।

नमः॑ स्रु॒त्या॑य च॒ पथ्या॑य च॒ नमः॑ का॒ट्या॑य च॒ नीप्या॑य च॒ नमः॒ कुल्या॑य च सर॒स्या॑य च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च वैश॒न्ताय॑ च॒ नमः॒ कूप्या॑य ॥ ३७ ॥

ॐ नमः स्रुत्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३७ ॥

भाष्यम्–(च) (स्रुत्याय) स्रुतिः नद्याः क्षुद्रप्रवाहस्तत्र भवः स्रुत्यस्तस्मै (च) (पथ्याय) पथि भवः पथ्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (काट्याय) काटे

भवः काट्यः कुत्सितम् अटति काटः विषममार्गः तत्र भवः काट्यः तस्मै (च) (नीप्याय) नीचैर्गच्छन्त्यापो यत्र स नीपः निम्नभूमिः तत्र भवः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (कुल्याय) कुल्या अल्पा कृत्रिमा सरित् कुलेषु देहेषु वाऽन्तर्यामिरूपेण भवः कुल्यः तस्मै (च) (सरस्याय) सरसि भवः सरस्यः तस्मै (नमः) नमः (च) (नादेयाय) नद्यां भवो नादेयः तस्मै नदीजलरूपाय (च) (वैशन्ताय) वेशन्तोऽल्पसरः तत्र भवः वैशन्तः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३७ ॥

भाषार्थ-क्षुद्रमार्ग ग्रामकी बाटमें स्थितके निमित्त और राजमार्गमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, दुर्गम मार्गमें स्थितके निमित्त और पर्वतके नीचे भागमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, नहरके मार्गमें स्थितके निमित्त वा देहोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थितके और सरोवरोंमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, नदीमें जलरूपसे स्थितके निमित्त और अल्पसरोवर गोष्पदादिके जलमें स्थितके निमित्त नमस्कार है ॥ ३७ ॥

गर्भित आशय-वेदही सबके निमित्त सुगम मार्ग है, इसमें चलनेसे दुःखादि नहीं सताते कारण कि इसमें कंटक नहीं हैं । और छोटे बडे सरोवररूप जो आश्रमोंका वर्णन है उनके द्वारा आप प्राप्त होते हो ॥ ३७ ॥

मन्त्रः ।

नमः॒ कूप्या॑य चावट्या॑य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चात॒प्या॑य च॒ नमो॒ मेघ्या॑य चविद्यु॒त्या॑य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चावर्ष्या॒य च॒ नमो॒ वात्या॑य ॥ ३८ ॥

ॐ नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३८ ॥

भाष्यम्-(च) (कूप्याय) कूपे भवः कूप्यः तस्मै (च) (अवट्याय) अवटे गर्ते भवः अवट्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वीध्र्याय) विशेषेण इध्रं निर्मलं शरदभ्रं तत्र भवो वीध्र्यः । यद्वा-विगतं इध्रो दीप्तिर्यस्मात्स वीध्री घनागमः तत्र भवाय (च) (आतप्याय) आतपे भवः आतप्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (मेघ्याय) मेघे भवः मेघ्यः तस्मै (च) (विद्युत्याय) विद्युति भवः विद्युत्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वर्ष्याय) वर्षे भवो वर्ष्यः तस्मै (च) (अवर्ष्याय) अवर्षे भवो अवर्ष्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३८ ॥

भावार्थ-कूपमें होनेवालेके निमित्त और गर्तमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और महाप्रकाश वा घोर अंधकारमें स्थितके निमित्त और धूप वा प्रकाशमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है मेघमें होनेवालेके निमित्त और बिजलीमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है। और वर्षाकी धारामें स्थितके निमित्त, तथा वृष्टिके प्रतिबंधमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३८ ॥

मन्त्रः ।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शङ्गवे ॥ ३९ ॥

ॐ नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३९ ॥

भाष्यम्-(च) और (वात्याय) वाते भवः वात्यः तस्मै (च) (रेष्म्याय) रिष्यन्ते नश्यन्ति भूतान्यत्रेति रेष्मा प्रलयकालः तत्र भवः रेष्म्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वास्तव्याय) वास्तु गृहं तत्र भवः वास्तव्यः तस्मै (च) (वास्तुपाय) वास्तु गृहं पाति वास्तुपः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (सोमाय) उमासहितः सोमस्तस्मै (च) (रुद्राय) दुःखनाशकाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (ताम्राय) उद्याद्रविरूपेण तस्मै (च) (अरुणाय) अरुणरूपाय (नमः) नमोऽस्तु ॥ ३९ ॥

भावार्थ-वायुप्रवाहमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और प्रलयकी पवनमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है। वास्तुगृहमें होनेवालेके निमित्त और वास्तुगृहके पालनेवालेके निमित्त नमस्कार है। चन्द्रमामें स्थितके निमित्त वा उमासहितके निमित्त, और दुःखनाशक रुद्ररूप वा अग्निरूपके निमित्त नमस्कार है। सायंकालके सूर्यमें स्थितके निमित्त प्रभातकालीन सूर्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है वा उदयकालीन ताम्र और उदयकालके उपरान्त कुछ रक्तरूपसूर्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है ॥ ३९ ॥

आशय-वायु आदिके परमाणुओंको एकत्र कर पंचीकरणकी रीतिसे इस संसारकी संपूर्ण वस्तुओंके रचनेवाले और सबके रक्षक सोम यव आदिके उत्पादक पापादि दोष निवारणको भयानकरूप अग्निसे तप्त धातुके समान शुद्ध रजोगुणसे संसार उत्पादकके निमित्त नमस्कार है ॥ ३९ ॥

मन्त्रः ।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भी-

मन्त्रः ।

नमो॑ऽग्रेव॒धाय॑ च दूरेव॒धाय॑ च॒ नमो॑ ह॒न्त्रे च॒ हनी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ता॒राय॑ ॥ ४० ॥

ॐ नमः शंभव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः । भुरिगति-शक्वरी छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४० ॥

भाष्यम्—(शङ्गवे) शं सुखं गमयतीति शंगुः सुखरूपा गावो वाचो वेदरूपा यस्येति वा तस्मै (च) (पशुपतये) प्राणिनां पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (उग्राय) शत्रून् हन्तुमुद्गूर्णायुधाय (च) (भीमाय) भीमः शत्रुभयोत्पादकः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (अग्रे वधाय) अग्रे स्थितो हन्तीति अग्रेवधः तस्मै (च) (दूरे वधाय) दूरे स्थितो हन्तीति दूरेवधः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (हन्त्रे) हननकर्त्रे लोके यो हन्ति तद्रूपेण रुद्र एव हन्तीत्यर्थः । (च) (हनीयसे) अतिशयहननकर्त्रे (नमः) नमोऽस्तु (च (हरिकेशेभ्यः) हरिता वर्णा केशा इव येषां तेभ्यः (वृक्षेभ्यः) कल्पतरुरूपेभ्यः (नमः) (च) (ताराय) तारयति संसारमिति तारः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ४० ॥

भावार्थ—कल्याणरूप देववाणीवालेके निमित्त नमस्कार है, और प्राणियोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठाये कठिन अन्तःकरणवालेके निमित्त और शत्रुभयउत्पादक भयानकदर्शनके निमित्त नमस्कार है, सन्मुखके शत्रुका वध करनेवालेके निमित्त और दूरके शत्रुका वध करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, मारनेवालेके रूपमें स्थित स्थावर पदार्थके लयकारीके निमित्त नमस्कार और अतिशयहन्ता सदाको मृत्युका अभाव करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, हरेपत्तेरूप केशवाले कल्पतरुरूपके निमित्त नमस्कार है, संसारसे तारनेवाले ॐकाररूपके निमित्त नमस्कार है ॥ ४० ॥

मन्त्रः ।

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥ ४१ ॥

ॐ नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रो देवता। वि० पू० ४१॥

भाष्यम्-(शम्भवाय) शं भवत्यस्मादिति शम्भवः। यद्वा-शं सुखरूपश्चासौ भवः संसाररूपश्च मुक्तिरूपो भवरूपश्च आनन्दविज्ञानघनरूपश्च तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (मयोभवाय) सुखरूपाय (च) (शङ्कराय) शं करोतीति शङ्करः लौकिकसुखकराय (नमः) नमोऽस्तु (च) मयस्कराय मयः मोक्षसुखं करोतीति मयस्करस्तस्मै (च) (शिवाय) कल्याणरूपाय (नमः) नमः (च) (शिवतराय) निर्विकाराय निरतिशयसर्वबीजाय भक्तानपि निष्पापान् करोतीत्यर्थः। तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ४१ ॥

भाषार्थ-इस लोकके कल्याणकारी जिनसे सुख होताहै अथवा सुखरूप, संसाररूप और मुक्तिरूपके निमित्त नमस्कार है, संसारसुखदाता पारलौकिक कल्याणके आकारके निमित्त नमस्कार है, लौकिकसुख करनेवालेके निमित्त नमस्कार है और मोक्षसुख करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, कल्याणरूप निष्पापके निमित्त नमस्कार है और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा निष्पाप करनेवालेके मिमित्त नमस्कार है। ॥ ४१ ॥

विशेष-स्रक्चंदनादिरूपसे लौकिकसुख शास्त्रज्ञानसे मोक्षसुख देनेवाले हैं ॥ ४१ ॥

मन्त्रः।

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणा-
य चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय
च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः सिकत्या-
य ॥ ४२ ॥

ॐ नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ ४२ ॥

भाष्यम्-(च) (पार्याय) पारे भवः पार्यः संसाराब्धेः परतीरे जीवन्मुक्तरूपेण वा भवः पार्यः तस्मै (च) (आवार्याय) अवार्कतीर संसारमध्ये संसारित्वेन भव आवार्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (प्रतरणाय) प्रकर्षेण मंत्रजपादिना पापतरणहेतुर्वा प्रतरति येन प्रतरणं नौकादि लघुद्रव्यं तत्र भवः तस्मै (च) (उत्तरणाय) उत्कृष्टेन तत्त्वज्ञानेन संसारतरणहेतुरुत्तरणं वा उत्तरति अनेनेत्युत्तरणं तीरः तत्र भवः तस्मै (नमः) नमः (च) (तीर्थ्याय) तीर्थे प्रयागादौ भवः तीर्थ्यः तस्मै

(च) (कूल्याय) कूले तटे भवः कूल्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (शष्प्या-य) शष्पे शरतृणे भवः शष्प्यः तस्मै (च) (फेन्याय) फेने भवः फेन्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ४२ ॥

भाषार्थ–समुद्रके भी विद्यमान अथवा संसारसागरके परपारमें जीवन्मुक्तरूपसे वर्त्तमानके निमित्त और सागरके इस पारमें भी विद्यमान वा संसारमध्यवर्तीके निमित्त नमस्कार है, जहाजमें विद्यमान वा अतिमंत्र जपादिसे पापके तारनेके कारणके निमित्त और डोंगेमें भी विद्यमान वा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञानसे संसारसागरके पार करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, सागर-आदिके गर्भमें वा तीर्थ प्रयाग पुष्करआदिमें विद्यमानके निमित्त और जलप्रणाली वा किना-रोंमें प्रगट होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, गंगादिके तटमें उत्पन्न कुशअंकुरादिमें विद्यमानके निमित्त और सागरादिके फेनमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ४२ ॥

मन्त्रः ।

नमः॑ सिक॒त्या॑य च प्रवा॒ह्या॑य च॒ नमः॑ कि॒ꣳशि॒लाय॑ च क्षय॒णाय॑ च॒ नमः॑ कप॒र्दिने॑ च पु॒लस्त॑ये च॒ नम॒ऽइरि॒ण्या॑य च प्रप॒थ्या॑य च॒ नमो॒ व्रज्या॑य ॥ ४३ ॥

ॐ नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा वा ऋषयः । जगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४३ ॥

भाष्यम्–(च) (सिकत्याय) सिकतासु भवः सिकत्यः तस्मै (च) (प्रवाह्याय) प्रवाहे स्रोतसि भवः प्रवाह्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (किंशिलाय) कुत्सिताः क्षुद्राः शिलाः शर्करारूपाः पाषाणा यत्र प्रदेशे स किंशिलः तद्रूपाय (च) (क्षय-णाय) क्षियन्त्यस्मिन्नाप इति क्षयणस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (कपर्दिने) जटाजूटयुक्ताय (च) (पुलस्तये) पुरोऽग्रे तिष्ठति पुलस्तिः । यद्वा–पूर्षु शरीरेषु अस्ति सत्ता यस्य स पुलस्तिः सर्वान्तर्यामी तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (इरि-ण्याय) इरिणे भवः इरिण्यः तस्मै (च) (प्रपथ्याय) प्रकृष्टः पन्थाः प्रपन्थो बहु-सेवितो मार्गस्तत्र भवः प्रपथ्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ४३ ॥

भाषार्थ–नदीआदिकी रेतीमें विद्यमान और नदी आदिके प्रवाहमें होनेवालेके निमित्त नम-स्कार है, नदीआदिके भीतर वृक्षकंकरादिमें विद्यमान वा क्षुद्र पाषाणकी शर्करायुक्त स्थानमें स्थितके निमित्त और स्थिरजलमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, जटाजूटयुक्त वा धूमतेसु

जलमें विद्यमान और पुरजलमें विद्यमान अथवा शरीरोंमें अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान निमित्त और तृणरहित ऊषरभूमिमें विद्यमान और बहुसेवित मार्गवालोंमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है ॥ ४३ ॥

मन्त्रः ।

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमः शुष्क्याय ॥ ४४ ॥

ॐ नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः॥ रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ४४ ॥

भाष्यम्-(च) (व्रज्याय) व्रजे गोसमूहे भवः व्रज्यः तस्मै (च) (गोष्ठ्याय) गावस्तिष्ठन्ति यत्रेति गोष्ठः तत्रभवो गोष्ठ्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (तल्प्याय) तल्पं शय्या तत्र भवस्तल्प्यः तस्मै (च) (गेह्याय) गेहे भवो गेह्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (हृदय्याय) हृदये भवो हृदय्यो जीवस्तस्मै (च) (निवेष्प्याय) निवेष्प्यं आवर्तो नीहारजलं वा तत्र भवो निवेष्प्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (काट्याय) काटे भवः काट्यः काटः कूपः कुत्सितमटन्ति गच्छन्ति जना यत्र स काटो दुर्गारण्यदेशस्तत्र भवः तस्मै (च) (गह्वरेष्ठाय) गह्वरे विषमे गिरिगुहादौ गम्भीरे जले वा तिष्ठतीति गह्वरेष्ठः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥४४ ॥

भाषार्थ-गोचारणस्थानमें विद्यमान और गोठमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है । शय्यामें विद्यमानके निमित्त और घरमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है हृदयमें जीवरूपसे स्थितके निमित्त और हिमसमूहमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, दुर्गम. मार्गमें विराजमानके निमित्त और गिरिगुहा वा गंभीरजलमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है ॥ ४४ ॥

मन्त्रः ।

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोल-

प्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च नमः प-
र्णाय ॥ ४५ ॥

ॐ नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋ० । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४५ ॥

भाष्यम्–(च)(शुष्क्याय)शुष्के काष्ठादौ भवः शुष्क्यस्तस्मै (च) (हरित्याय) आर्द्रे काष्ठादौ भवः हरित्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (पांसव्याय) पांसुषु धूलिषु भवः पांसव्यः तस्मै (च) (रजस्याय) रजसि गुणे परागे वा भवः रजस्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (लोप्याय) लोपे भवः लोप्यः तस्मै (च) (उलप्याय) उलपा वल्वजादितृणविशेषास्तत्र भवः उलप्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (ऊर्व्याय) ऊर्व्यां भूमौ भवः ऊर्व्यः तस्मै (च) (सूर्व्याय) शोभनः ऊर्व्यः कल्पानलः तत्र भवः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥ ४५ ॥

भाषार्थ–सूखे काष्ठादिमें विराजमानके निमित्त और हरे पत्ते आदिमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, धूरिमें विराजमानके निमित्त और रजोगुण वा पुष्पधूरिमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, सगन्ध्यदेशमें विराजमानके निमित्त और वल्वजादि तृणमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, भूमि वा वडवानलमें विराजमानके निमित्त और महाप्रलयकी अग्निमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है ॥ ४५ ॥

मन्त्रः ।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुर-
माणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्र-
खिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो न-
मो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬं हृदये-
भ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिण-
त्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

ॐ नमः पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी ऋ० । स्वराट् प्रकृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४६ ॥

भाष्यम्-(च) (पर्णाय) पत्ररूपाय (च) (पर्णशदाय) पतितपर्णावस्थानकर्त्रे (नमः) नमोऽस्तु (च) (उद्गुरमाणाय) उद्यमशीलाय (च) (अभिघ्नते) अभिहन्ति शत्रूनित्यभिघ्नन् तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (आखिदते) आसमंतात् खिद्यते दैन्यं करोत्यभक्तानामित्याखिदन् तस्मै (च) (प्रखिदते) प्रकर्षेण खेदयति पापिनामिति प्रखिदन् तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (इषुकृद्भ्यः) ये इषवो बाणान् कुर्वन्ति तेभ्यः (च) (धनुष्कृद्भ्यः) ये यूयं धनुष्कृतस्तेभ्यः (वः) (नमः) नमोऽस्तु वो युष्मदादेशात्प्रत्यक्षा एते रुद्राः तिस्रोऽशीतयो रुद्राः समाप्ताः । एवं चत्वारिंशदधिकशतद्वयमन्त्रैः रुद्रस्य सर्वोत्तमत्वमुक्तम् । इदानीं रुद्राणां हृदयभूतानामग्निवायुसूर्याणां सम्बन्धीनि यजूंषि उच्यन्ते (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु केभ्यः (किरिकेभ्यः) कुर्वन्तीदं जगद्वृष्ट्यादिद्वारेणेति किरिकाः वाय्वग्निसूर्याः किंभूतेभ्यः (देवानां हृदयेभ्यः) देवानामग्निवायुसूर्याणां हृदयभूता इत्यर्थः ।(नमः) नमोऽस्तु (विचिन्वत्केभ्यः) विचिन्वन्ति पृथक्कुर्वन्ति धर्मकारिणं पापकारिणं चेति विचिन्वत्काः तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (विक्षिणत्केभ्यः) विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापानिति विक्षिणत्कास्तेभ्योऽग्न्यादिभ्यो नमः (आनिर्हतेभ्यः) आ समन्तान्निर्गताः सर्गादौ लोकेभ्यः इत्यानिर्हतास्तेभ्यो नमः । हन्तिर्गत्यर्थः । ("तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः") इतिश्रुतेः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ-पर्णमें विद्यमानके निमित्त और पर्णपतित पर्णस्थित देशरूप वा पर्णमें उत्पन्न काष्ठादिमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है. निरन्तर उद्यमी उत्पन्न करनेवालेके निमित्त और शत्रुओंके संहारकके निमित्त नमस्कार है, अभक्तोंको सदा दुःखदाता त्रिविधतापके प्रेरकके निमित्त और त्रिविध तापके उत्पन्नकर्ता वा पापियोंको अतिदुःखदायीके निमित्त नमस्कार है, बाणको उत्पन्न करनेवालेके निमित्त और धनुषके करनेवाले रुद्ररूप आपके निमित्त नमस्कार है (युष्मदादेशसे यह प्रत्यक्ष रुद्र हैं, यहां २४० पूर्ण हुए) (यहांतक रुद्रकी प्रधानता कहकर अब प्रधानभूत अग्नि वायु सूर्यादिरूपसे वर्णन करते हैं) प्रथम यजु १४ का और तीन सात अक्षरके व्याहृतिसंज्ञक हैं, जो देवताओंके हृदयस्वरूप प्रधान अग्नि सूर्यके हृदयरूप वृष्टयादि द्वारा जगत्को सृजन करते हैं, ऐसे आपके निमित्त नमस्कार है, जो देवता देवताओंके हृदयस्वरूप हैं, जो वृष्टि आदिसे जगत्का पालन करते, जो धर्मात्मा और पापात्माओंको पृथक् करते हैं उन अग्नि, वायु और सूर्यके हृदयरूपके निमित्त नमस्कार है, विविधपापोंको दूर करनेवाले अग्नि आदिके निमित्त नमस्कार है, अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप विक्षिणत्क वृष्टि आदिसे जगत्का संहार करते हैं अग्नि वायु सूर्यके हृदयस्वरूप हैं उनके निमित्त वारंवार नमस्कार है सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारोंके निमित्त नमस्कार है अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप आनिर्हत "काल प्राप्त होनेसे स्वयं भी गुप्त होजाताहै" वा जो सृष्टिकी आदिमें होते हैं इससे आनिर्हत कहते हैं ० जो अग्नि, वायु और सूर्यका भी हृदयस्वरूप है, उसको वारंवार नमस्कार है ॥ ४६ ॥

मन्त्रः ।

द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ॥
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्-
मो च नः किञ्चनाममत् ॥ ४७ ॥

ॐ द्राप इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४७ ॥

भाष्यम्–(द्रापे) द्रा कुत्सायां गतौ च द्रापयतीति द्रापि पापकारिणां कुत्सितां गतिं नयतीत्यर्थः (अन्धसस्पते) सोमस्य पालक (दरिद्र) हे निष्परिग्रह (नीललोहित) कण्ठे नीलोऽन्यत्र लोहितः शिव (नः) अस्माकम् (आसाम् प्रजानाम्) पुत्रादीनाम् (एषाम्) (पशूनाम्) अस्मदीयानां गवादीनाम् (माभेः) मा भैषीः भयं मा कुरु (मा रोङ्) भङ्गं मा कार्षीः (च) (किञ्चन) अपत्यादि (मा) (आममत्) मा भीः मा रुग्णं कुरु ॥ ४७ ॥

भाषार्थ–हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले ! हे सोमके पालक ! अद्वितीय होनेसे सहायशून्य निष्परिग्रह हे नील और लोहित एक अंश नील दूसरा लाल शुक्ल कृष्ण उभयात्मक वा कंठमें नील अन्यत्र लोहित शिव ! हमारे इन पुत्र पौत्रादि और इन पशुओंको मत भय करो तथा प्रजा पशुओंका भंग मत करो और किसी प्रकार भी हम तथा हमारी प्रजा पशुको मत रुग्ण करो सब प्रकार प्रजापशुमें मंगल करो ॥ ४७ ॥

मन्त्रः ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरा-
महे मतीः ॥ यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं
पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥

ॐ इमा रुद्रायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी जगती छंदः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४८ ॥

भाष्यम्–(यथा) येन प्रकारेण (द्विपदे) पुत्रादये (चतुष्पदे) गवादिपशवे (शम्) सुखम् भवतु तथा (अस्मिन्) (ग्रामे) वासस्थाने (विश्वम्) सर्वं प्राणिगतम् (पुष्टम्) समृद्धम् (अनातुरम्) निरुपद्रवम् (असत्) भवतु तेन प्रकारेण

वयम् (इमाः) अस्मदीया (मतीः) बुद्धीः (तवसे) महते (कपर्दिने) जटिलाय (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो निवसन्तो वीराः शूरा यत्र स क्षयद्वीरस्तस्मै क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्मादिति वा (रुद्राय) रुद्रदेवाय (प्रभरामहे) समर्पयामः ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-जिस प्रकार पुत्रादिमें गवादिपशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस ग्राममें संपूर्ण प्राणिसमूह पुष्ट उपद्रवरहित हो उसी प्रकार हम इन अपनी बुद्धियोंका महाबली जटिलशूरवीरोंके निवासभूत रुद्रदेवताके निमित्त समर्पण करते हैं ॥ ४८ ॥

मन्त्रः ।

याते॑रुद्र॒शि॒वात॒नूः॒शि॒वाविश्वाहा॑भेष॒जी ॥ शि॒वारु॒तस्य॑भेष॒जीतया॑नोमृडजी॒वसे॑ ॥४९॥

ॐ याते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । आर्ष्यनुष्टुप् छंदः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४९ ॥

भाष्यम्-(रुद्र) हे शंकर (या) (ते) तव (शिवा) शान्ता (विश्वाहा) सर्वदा (शिवा) कल्याणकारिणी (भेषजी) औषधरूपा संसारव्याधिनिवर्तका तथा (रुतस्य) व्याधेः (शिवा) समीचीना (भेषजी) निवर्तकौषधिः (तनूः) शरीरमास्ति (तया) (तन्वा) शरीरेण शक्त्या वा (नः) अस्मान् (जीवसे) जीवितुम् (मृड) सुखय ॥ ४९ ॥

भाषार्थ-हे शंकर ! जो आपकी शान्त निरंतर कल्याणकारिणी औषधिरूप संसारकी व्याधिनिवृत्त करनेवाली तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औषधी रूप शरीर वा शक्ति है उस शक्तिसे हमारे जीवनको सुखी करो ॥ ४९ ॥

भावार्थ-हे रुद्र ! तुम्हारी कल्याणरूपिणी जो तनू सबके कल्याणसाधनी जो सब रोगोंकी महौषधि है उस तनुके द्वारा हमको सुखी करो ॥ ४९ ॥

मन्त्रः ।

परि॑नोरु॒द्रस्य॑हे॒तिर्वृ॑णक्तु॒परि॑त्वे॒षस्य॑ दुर्म॒तिर॑घा॒योः ॥ अव॑स्थि॒रामघव॑द्भ्यस्तनुष्व॒मीढ्व॑स्तो॒काय॒तन॑यायमृड ॥ ५० ॥

ॐ परिन इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋ० । आर्षी त्रिष्टुप् छंदः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५० ॥

भाष्यम्-(रुद्रस्य) शिवस्य (हेतः) आयुधम् (नः) अस्मान् (परिवृणक्तु) परिवर्तयतु (त्वेषस्य) क्रुद्धस्य (अघायोः) पापशीलस्य (दुर्मतिः) दुष्टा मतिर्द्रोहेच्छास्मान् (परि) परिवृणक्तु (मीढ्व) सेक्तः (मघवद्भ्यः) मघं हविर्लक्षणं धनं विद्यते येषां ते यजमानास्तदर्थः यजमानानां भयनिवृत्तये (स्थिरा) स्थिराणि दृढानि धनूंषि (अवतनुष्व) अवतारय ज्यारहितानि कुरु किञ्च (तोकाय) पुत्राय (तनयाय) पौत्राय (मृड) सुखय ॥ ५० ॥

भाषार्थ-रुद्रके संपूर्ण आयुध हमको परित्याग करें । पापियोंपर क्रोधित अर्थात् कोपनस्वभाव दण्ड देनेकी इच्छावाली दुर्मति हमको सब प्रकार त्याग करे । हे अभिलषितफलप्रद ! हविरूप धनसे युक्त यजमानोंके भय दूर करनेको दृढ धनुषोंको ज्याहीन करो, हमारे पुत्र-पौत्रादिको सुख दो ॥ ५० ॥

मन्त्रः ।

मीढुष्टम॒ शिव॑तम शि॒वो नः॑ सु॒मना॑ भव ॥ पर॒मे वृ॒क्षऽआयु॑धन्नि॒धाय॒ कृत्तिं॒ वसा॑नऽआच॑र॒ पिना॑कं॒ बिभ्र॒दाग॑हि ॥ ५१ ॥

ॐ मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋ० । निच्यृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५१ ॥

भाष्यम्-(मीढुष्टम) सेक्तृतम (शिवतम) हे अत्यन्तं कल्याणकर्तः (नः) अस्माकम् (शिवः) शान्तः (सुमनाः) हृष्टचित्तः (भव) भवतु (परमे) दूरस्थे उन्नते वा (वृक्षे) वटादौ (आयुधम्) त्रिशूलादिकं (निधाय) संस्थाप्य (कृत्तिं वसानः) चर्म परिदधानः सन् (आचर) आगच्छ तपश्चरेति वा (पिनाकम्) धनुः (बिभ्रत्) (आगहि) आगच्छ ज्याशररहीनं धनुर्मात्रं शोभार्थं धारयन्नागच्छेत्यर्थः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ-हे अतिशय फलप्रदाता ! हे अत्यन्त कल्याणकर्ता ! हमको शान्त सुन्दरमनवाले हो दूरस्थित वा ऊंचे वृक्षपर अपना त्रिशूल रखकर मृगचर्म धारण किये आगमन कीजिये वा तप कीजिये, पिनाक धनुषको धारण किये आगमन करो अर्थात् ज्या और बाणोंसे हीन धनुष शोभाके निमित्त धारण किये आइये ॥ ५१ ॥

भावार्थ-भाव यह कि, संसाररूपी वृक्षपर पापोंके संहारकी शक्तिको फैलाकर कार्यकारिणी शक्तिसे वश कर हमारी रक्षा करो, इस मंत्रका तात्पर्य बडा गूढ है, इसमें संसारियोंके निमित्त शस्त्र है, मुमुक्षुओंके निमित्त अभय है इत्यादि तपस्वी महात्माओंके जानने योग्य है ॥ ५१ ॥

मन्त्रः ।

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः ॥ यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

ॐ विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्र० ऋ० । आर्ष्यनुष्टुप्० । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५२ ॥

भाष्यम्-(विकिरिद्र) विविध घातानुपद्रवं द्रावयतीति विकिरिद्रः तत्सम्बुद्धौ हे विकिरिद्र (विलोहित) विगतकलुषभाव (भगवः) हे भगवन् (ते) (नमः) नमः (अस्तु) अस्तु (या) (ते) (सहस्रꣳहेतयः) असंख्यान्यायुधानि सन्ति (ताः) तानि (अस्मत्) (अन्यम्) अस्मद्व्यतिरिक्तम् (निवपन्तु) घ्नन्तु ॥ ५२ ॥

भाषार्थ-हे अनेक उपद्रव नाश करनेवाले ! हे शुद्धस्वरूप भगवन् ! आपके निमित्त नमस्कार हो तुम्हारे जो सहस्रों शस्त्र हैं वे हमको छोडकर और कहीं उपद्रवियोंपर पडें (विलोहितका अर्थ अत्यन्त रक्तवर्ण संहारमूर्ति भी है) ॥ ५२ ॥

मन्त्रः ।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ॥ तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ५३ ॥

ॐ सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजा० ऋ० । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५३ ॥

भाष्यम्-(भगवः) हे षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न (तव) (बाह्वोः) हस्तयोः (सहस्राणि) असंख्यातानि (सहस्रशः) सहस्रशः (हेतयः) आयुधानि सन्ति (ईशानः) जगन्नाथस्त्वम् (तासाम्) हेतीनाम् (मुखाः) मुखानि (पराचीनाः) अस्मत्तः पराङ्मुखानि (कृधि) कुरु ॥ ५३ ॥

भाषार्थ-हे भगवन् ! षडैश्वर्यसंपन्न ! आपकी भुजाओंमें बहुत प्रकारके सहस्रों खड्गशूलादि आयुध हैं जगत्के पति आप उन संहारकारी आयुधोंके मुख हमसे पराङ्मुख कीजिये ५३॥

भावार्थ-दृश्यादृश्य जितने बाहुयुगल हैं वह सबही उनके हैं वा सबहीमें उनकी सत्ता है आशय यह कि पापोंके द्वारा प्राणी दुःख पातेहैं आप उन पापोंको नीचे मुख कीजिये और हमको सुखी कीजिये ॥ ५३ ॥

मन्त्रः ।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽ अधि भूम्याम् ॥ तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

ॐ असंख्याता इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५४ ॥

भाष्यम्-(असंख्यातासहस्राणि) असंख्यातानि सहस्राणि अमितानि (ये) रुद्राः (भूम्याम्) भूमेः (अधि) उपरि स्थिताः (तेषाम्) रुद्राणाम् (धन्वानि) धनूंषि (सहस्रयोजने) सहस्राणि योजनानि अस्मिंस्तादृशे पथि सहस्रयोजनव्यवहिते मार्गे (अवतन्मसि) अवतन्मः अवतारयामः ॥ ५४ ॥

भाषार्थ-जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमिके ऊपर स्थित हैं, उनके धनुष सहस्र योजन दूर यह मंत्र पढकर प्रार्थनाके बलसे डालकर अभय होतेहैं, इस मंत्रसे रुद्रका असंख्यत्व वा असंख्य वस्तुमें एकरुद्रका व्यापकत्व सिद्ध हुआ ॥ ५४ ॥

मन्त्रः ।

अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि । तेषाᳬसह० ॥ ५५ ॥

ॐ अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्युष्णिक्छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५५ ॥

भाष्यम्-अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते (अस्मिन्) अस्मिन् (महति) विशाले (अर्णवे) अर्णांसि जलानि विद्यन्ते यत्र तदर्णवम् । मेघाधारत्वात् (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष (अधि) अधिश्रित्य ये (भवाः) रुद्राः सन्ति तेषां धन्वान्यवतन्मसीति पूर्ववत् ॥ ५५ ॥

भाषार्थ-अंतरिक्षके रुद्रोंका वर्णन करते हैं इस अंतरिक्षमें और बडे सागर अर्थात् आकाशगंगानामसे प्रसिद्ध नक्षत्रपुंज धाराप्रवाहमें आश्रय करके जो रुद्र स्थित हैं उनके संपूर्ण धनुष मंत्रबलसे सहस्रयोजन दूर व्यवहित करडालते हैं ॥ ५५ ॥

गूढाशय-इस बडे संसाररूपी समुद्रमें उत्पन्न हुए जीवोंके हृदय अन्तरमें जो ज्ञानयुक्त परमेश स्थित है उस असंख्यात फलदाताका विचार करो ॥ ५५ ॥

मन्त्रः ।

नील॑ग्रीवाः शितिक॒ण्ठा दिव॒ᳪ रु॒द्राऽउप॑श्रिताः ॥ तेषा० ॥ ५६ ॥

ॐ नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापति० । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५६ ॥

भाष्यम्-द्युलोकस्थिता रुद्रा उच्यन्ते (नीलग्रीवाः) कृष्णकण्ठाः (शितिकण्ठाः) श्वेतकण्ठाश्च (रुद्राः) ये रुद्राः (दिवम्) द्युलोकम् (उपश्रिताः) उपरिस्थिताः तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ-द्युलोकस्थित रुद्रोंका वर्णन । नीलग्रीवावाले श्वेतकंठवाले विषभक्षणसे कितनाएक कण्ठ श्वेत और कितनाएक नील अथवा निर्मल आकाश और मेघसहित आकाशमें चन्द्र-तारादिमें वर्तमान जो रुद्र द्युलोकमें आश्रय कियेहुए हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ॥ ५६ ॥

मन्त्रः ।

नील॑ग्रीवाः शितिक॒ण्ठाः श॒र्वाऽअ॒धः क्ष॑मा॒च॒राः ॥ तेषा० ॥ ५७ ॥

ॐ नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५७ ॥

भाष्यम्-पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते (नीलग्रीवाः) कृष्णग्रीवाः (शितिकण्ठाः) श्वेतग्रीवाः ये (शर्वाः) रुद्राः (अधः) अधोभागे (क्षमाचराः) पाताले वर्तमानाः (तेषाम्) तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

भाषार्थ-पातालस्थित रुद्रोंका वर्णन । नीलीगर्दनवाले, श्वेतकंठवाले जो शर्वनामक रुद्र नीचे पातालमें स्थित हैं, उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ॥ ५७ ॥

मन्त्रः ।

ये वृ॒क्षेषु॑ श॒ष्पिञ्ज॑रा॒ नील॑ग्रीवा॒ विलो॑हिताः ॥ तेषा० ॥ ५८ ॥

ॐ ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ५८ ॥

भाष्यम्-(ये) (शष्पिञ्जराः) शष्पा इव पिञ्जरवर्णाः हरितवर्णाः (नीलग्रीवाः) नीलकंठाः (विलोहिताः) विशेषेण रक्तवर्णाः विगतकलुषभावा वा (वृक्षेषु) अश्वत्थादिषु स्थिताः तेषामित्यादि पूर्ववत् । लोहितशब्देन धातव उच्यंते तेन त्वग्लोहितमज्जादियुक्ता इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ-जो हरितवर्ण नीलग्रीवावाले विशेष रक्तवर्ण अथवा तेजोमय शरीरवाले वृक्षोंमें अर्थात् पत्ते शाखा कोंपल आदिमें वर्तमान हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ॥ ५८ ॥

मन्त्रः ।

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ॥ तेषां० ॥ ५९ ॥

ॐ ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापति० । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५९ ॥

भाष्यम्-(ये) रुद्राः (भूतानाम्) देवविशेषाणाम् (अधिपतयः) अन्तर्हितशरीराः सन्तो मनुष्योपद्रवकरा भूतास्तेषां पालकाः (विशिखासः) शिखारहिता मुण्डा इत्यर्थः (कपर्दिनः) अन्ये जटाजूटयुताः तेषामित्यादिपूर्ववत् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ-जो रुद्र देव विशेषोंके अधिपति हैं अर्थात् अन्तर्हितशरीर होकर मनुष्योंमें उपद्रव करनेवाले भूतोंके पालक हैं, तथा शिखाहीन मुण्डितशिर जो जटाजूटसे युक्त हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर प्रक्षेप करते हैं ॥ ५९ ॥

मन्त्रः ।

ये पथाम्पथिरक्षय ऽऐलबृदा ऽआयुर्युधः ॥ तेषां० ॥ ६० ॥

ॐ ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६० ॥

भाष्यम्-(ये) ये रुद्राः (पथाम्) लौकिकवैदिकमार्गाणाम् (पथिरक्षय ः) अधिपतयः तथा पथिरक्षसः (ऐलभृतः) इलानामन्नानां समूहः ऐलं ये बिभ्रति ते

यद्वा–इला पृथिवी तस्या इदमैलमन्नं तद्बिभ्रति ते ऐलभृतः अन्नैर्जन्तूनां पोषका इत्यर्थः । (आयुर्युधः) यावज्जीवयुद्धकराः । आयुरेव जीवनं पाणौ कृत्य युध्यन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ६० ॥

भाषार्थ–जो लौकिक वैदिक मार्गोंके अधिपति, मार्गोंके पालक, राज्यशासनकारी वा अन्नके धारक अथवा अन्नसे प्राणियोंको पुष्ट करनेवाले जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रत हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर निक्षेप करतेहैं ॥ ६० ॥

मन्त्रः ।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ॥ तेषां० ॥ ६१ ॥

ॐ ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६१ ॥

भाष्यम्–(ये) रुद्राः (सृकाहस्ताः) सृकेत्यायुधनाम सृका आयुधानि हस्ते येषां ते (निषङ्गिणः) निषङ्गा खड्गा हस्ते येषां ते (तीर्थानि) प्रयागकाश्यादीनि (प्रचरन्ति) गच्छन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ–जो रुद्र आयुधविशेष (ढाल) हाथमें लिये तथा खड्गधारण किये, काशीप्रयागादि तीर्थोंमें फिरते हैं वा जो तीर्थोंका तथा धर्मका प्रचार करते हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर निक्षेप करते हैं ॥ ६१ ॥

मन्त्रः ।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥ तेषां० ॥ ६२ ॥

ॐ येऽन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छंदः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ६२ ॥

भाष्यम्–(ये) रुद्राः (अन्नेषु) भुज्यमानेषु (जनान्) प्राणिजातान् (विविध्यन्ति) विशेषेण ताडयन्ति धातुवैषम्यं कृत्वा रोगानुत्पादयन्तीत्यर्थः । तथा (पात्रेषु) पात्रस्थक्षीरोदकादिषु स्थिताः सन्तः (पिबतः) क्षीरादिपानं कुर्वतो जनान् विविध्यन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ६२ ॥

भाषार्थ–जो रुद्र अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको विशेष करके ताडन करते हैं अर्थात् धातुकी विषमता कर रोगोंको उत्पन्न करते हैं, पात्रोंमें जल दूध आदि पीते हुए जनोंके कुत्सित जल आदिसे रोगग्रसित करते हैं, उनके संपूर्ण धनुषोंको सहस्रयोजन दूर निक्षेप करते हैं ॥ ६२॥

मन्त्रः ।

यऽएतावन्तश्च भूयाᳫंसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥ तेषां० ॥ ६३ ॥

ॐ य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६३ ॥

भाष्यम्-(च) (ये) (रुद्राः) रुद्राः (एतावन्तः) एतत्प्रमाणं येषां ते (च) (भूयांसः) अतिशयेन बहवो भूयांसः (दिशः) दश दिशः (वितस्थिरे) आश्रिताः दश दिशो व्याप्य स्थितास्तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ-और जो रुद्र इन दशों दिशाओंमें अथवा इतने और इन कहे हुओंसे भी अधिक सम्पूर्ण दिशाओंमें आश्रित हैं अर्थात् जिनके दर्शन हमको नहीं होते और जिनका दर्शन इन मंत्रोंमें नहीं हुआ उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजनकी दूरीपर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ॥ ६३ ॥

मन्त्रः ।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ॥ तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

ॐ नमोऽस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निचृद्धृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६४ ॥

भाष्यम्-त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते-(ये) रुद्राः (दिवि) द्युलोके वर्तन्ते (येषाम्) रुद्राणाम् (वर्षम्) वृष्टिरेव (इषवः) शराः आयुधस्थानीया वृष्टिः (तेभ्यः) (रुद्रेभ्यः) (नमोऽस्तु) नमस्कारोऽस्तु (तेभ्यः) रुद्रेभ्यः (दश प्राचीः) दशसंख्याकाः प्राचीः प्रागभिमुखाः अङ्गुलीः कुर्वे इति शेषः । (दश दक्षिणाः) दक्षिणाभिमुखाः दशांगुलीः कुर्वे (दश प्रतीचीः) प्रत्यङ्मुखाः दशांगुली कुर्वे (दशोदीचीः) उदीचीः उदङ्मुखाः दशांगुलीः (दशोर्ध्वाः) उपरि दशांगुलीः कुर्वे, अञ्जलिं बद्ध्वा

-सर्वदिक्षु नमस्करोमीत्यर्थः । (नमः) नमोऽस्तु (ते) रुद्राः (नः) अस्मान् (अवन्तु) रक्षन्तु (ते) (नः) अस्मान् (मृडयन्तु) सुखयन्तु (ते) रुद्राः (यम्) पुरुषम् (द्विष्मः) द्वेषं कुर्मः (च) (यः) पुरुषः (नः) अस्मान् (द्वेष्टि) द्वेषं करोति (तम्) पुरुषम् (एषाम्) पूर्वोक्तानां रुद्राणाम् (जम्भे) दंष्ट्राकराले मुखे (दध्मः) स्थापयामः । अस्मद्विषमस्मद्द्वेष्यं च नरं पूर्वोक्ता रुद्रा भक्षयन्तु अस्मांश्चावन्तु चेत्यर्थः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ-जो रुद्र द्युलोकमें विद्यमान हैं, जिन रुद्रोंके वृष्टि ही बाण हैं उन रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, उन रुद्रोंके निमित्त पूर्वदिशामें दश अंगुली होकरके अर्थात् हाथ जोडकर, दक्षिणामें दशअंगुली होकर, पश्चिममें दशअंगुली होकर, उत्तरमें दशअंगुली होकर, ऊर्ध्वमें दशअंगुली अर्थात् कर जोडकर प्रार्थना करताहूं, उनके निमित्त नमस्कार हो, वे रुद्र हमारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें, वे रुद्र जिससे हम द्वेष करतेहैं और जो हमसे द्वेष करता है उनको इन रुद्रोंके गढमें स्थापन करतेहैं ॥ ६४ ॥

भावार्थ-जो देवता द्युलोकमें हैं तिनके बाण वृष्टि है अर्थात् वृष्टिद्वारा सृजन पालन और अतिवृष्टिसे संहार कियाकरते हैं, सबदिशाओंमें उनको हाथ जोडकर प्रणाम करते हैं ॥ ६४ ॥

मन्त्रः ।

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ येऽन्तरि॑क्षे॒ येषां॒ वात॒ऽइष॑वः ॥ तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः ॥ तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६५ ॥

ॐ नमोस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । धृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६५ ॥

भाष्यम्-(रुद्रेभ्यः) रुद्रेभ्यः (नमोऽस्तु) नमस्कारोऽस्तु (ये) (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षे वर्तन्ते (येषाम्) रुद्राणाम् (वातः) वायुः (इषवः) आयुधस्थानीयः कुर्वातेनान्नं विनाश्य वातरोगं चोत्पाद्य जनान् घ्नन्ति तेभ्योऽन्तरिक्षस्थेभ्यो रुद्रेभ्यो नमः । शेषं पूर्ववत् ॥ ६५ ॥

भाषार्थ-उन रुद्रके निमित्त नमस्कार हो, जो रुद्र अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं जिनके बाण पवन हैं अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन, पालन औ आंधी आदिसे संहार करतेहैं उनके निमित्त नमस्कार है, शेष पूर्ववत् ॥ ६५ ॥

मन्त्रः ।

नमोऽस्तुरुद्रेभ्योयेपृथिव्यांयेषामन्नमिषवः॥ तेभ्योदशप्राचीर्दशदक्षिणादशप्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्योनमोऽअस्तु तेनोऽवन्तुतेनोमृडयन्तुतेयन्द्विष्मोयश्चनो द्वेष्टितमेषाञ्जम्भेदध्मः ६६ ॥

इतिसंहितायांरुद्रपाठेपञ्चमोऽध्यायः५ ॥

ॐ नमोऽस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । धृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६६ ॥

भाष्यम्-(रुद्रेभ्यः) रुद्रेभ्यः (नमः) नमस्कारः (ये) रुद्राः (पृथिव्याम्) भूम्याम् वर्तन्ते (येषाम्) (इषवः) बाणाः (अन्नम्) अदनीयं वस्तु आयुधम् अयथान्नभक्षणे चौर्ये वा अवस्थे रोगमुत्पाद्य जनान् घ्नन्ति तेभ्यो नमः तेऽस्मानवन्तु । शेषं पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

भावार्थ-इन रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, जो रुद्र पृथिवीमें स्थित हैं, जिनके बाण अन्न हैं, जो अन्नद्वाराही सृजन, पालन और मिथ्याहारविहारसे रोग उत्पन्न कर प्राणियोंका संहार करते हैं, उनके निमित्त नमस्कार है, शेष पूर्वके समान ॥ ६६ ॥

भावार्थ-जिस समय मनुष्यको रुद्रका सर्वभाव विदित होजाय और उसकी दृष्टिमें यह भाव समाजाय कि, यह सब कुछ रुद्रद्वारा होरहाहै यही शंकर रुद्र नीललोहित कपर्दी आदि अनेक नामोंको कार्यानुसार धारण कर रहाहै उसके सिवाय नहीं है तब वह अद्वैतनिष्ठ होताहै और रुद्रकी महिमाको प्राप्त हो जीवन्मुक्त होकर विचरताहै । इस प्रकार इस षोडश अध्यायमें रुद्रदेवताका संपूर्ण जगत्में अधिकार वर्णन किया है अर्थात् संपूर्ण जगत्में वह परमात्मा रुद्ररूपसे व्याप्त है कोई स्थान उससे भिन्न नहीं है इसी कारण स्थावर जंगम सबहीको प्रणाम किया है, इष्ट अनिष्ट सब उसीके द्वारा होता है, त्रिलोकीका उत्पत्ति, पालन, प्रलय सब रुद्रसेही होता है, (एको रुद्रो न द्वितीयः) इस श्रुतिके अनुसार एक अद्वैतरुद्रका प्रतिपादन होताहै, वेदानुसार उनकी उपासना करनी चाहिये, रुद्रकी उपासनासे सब उपद्रव दूर होकर चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है इसका पाठ करनेसे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥६६॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितः पंचमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

हरिः ॐ वयꣳसोमव्व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ १ ॥

ॐ वयꣳसोम इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । सोमो देवता । दक्षिणाग्न्युपस्थाने विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-(सोम) हे सोमदेव (वयम्) बन्ध्वादयः (तव व्रते) त्वदीयकर्मणि वर्तमानाः (तनूषु) त्वदीयेष्वङ्गेषु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिषु (मनः) मनः (बिभ्रतः) धारयन्तः (प्रजावन्तः) पुत्रपौत्रादिभिर्युक्ताः सन्तः (सचेमहि) सङ्गच्छेमहि । [यजु० ३।५६] ॥ १ ॥

भाषार्थ-हे सोम ! (पितृयज्ञका सोमदेवता है " सोमाय पितृमते स्वधा " इस मन्त्रसे हवि दीजाती है) हम यजमान तेरे व्रतसंबंधिकर्ममें वर्तमान हुए आपके शरीरावयवमें वा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें मन धारण करते वा लगाये हुए आपहीकी कृपासे पुत्रपौत्रादिसे युक्त हुए हम सेवन करते हैं वा सदा तुम्हारे संबंधवाले हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

एषते रुद्रभागः सहस्वस्राम्बिकया तञ्जुषस्व स्वाहैषते रुद्रभागऽआखुस्ते पशुः ॥ २ ॥

ॐ एषत इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । प्राजापत्या बृहती छन्दः । रुद्रो देवता । अवदानहोमे विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्-(रुद्र) हे रुद्र (एषः) अस्माभिरुपकीर्यमाणोऽतिरिक्तः पुरोडाशः (ते) तव (स्वस्रा) भगिन्या (अम्बिकया) अम्बिकानाम्न्या (सह) (भागः) भजनीयः स्वीकर्तुं योग्यः "अम्बिका ह वै नामास्य स्वसा" इत्यादिश्रुतेः । (तम्) पुरोडाशम् (जुषस्व) सेवस्व (स्वाहा) सुहुतमस्तु । अतः परमाखूत्किरं परिकिरति (रुद्र) हे रुद्र (एषः) अस्माभिरुपकीर्यमाणोऽतिरिक्तः पुरोडाशः (ते) तव (भागः) अंशः तथा (ते) तव (आखुः) मूषकः (पशुः) पशुत्वेन समर्पितः । आखुदानेन तुष्टो रुद्रस्तयाऽम्बिकया यजमानपशून् मारयतीत्यर्थः । [यजु० ३।५७] ॥ २ ॥

भावार्थ-विरोधियोंको, पापियोंको, अधर्मियोंको, अन्यायियोंको उनके कर्मका फल देकर रुलानेवाले हे रुद्रदेवता ! तुम्हारी भगिनी अम्बिकाके साथ यह हमसे दियाहुआ पुरोडाश स्वीकार करनेके योग्य है इस पुरोडाशको सेवन करो हे रुद्र ! हमारे द्वारा अवकीर्ण (बखेरा) हुआ यह पुरोडाश तुम्हारे सेवनीय है तथा आपका बिलमध्यमें रहनेवाला मूषा (चूहा) रक्षणीय पशु है, इस कारण शेषभाग इसको भी देतेहैं ॥ २ ॥

विशेष-अम्बिका नामकी रुद्रकी बहन है, उसके साथ रुद्रदेव विरोधियोंके मारनेकी इच्छा करतेहैं; सो इस क्रूरदेवता अम्बिकाके साथ उसे मारते हैं, वह अम्बिका शरद्रूप हो जरा-दिक उत्पन्न कर उस विरोधीको मारती है, रुद्र अम्बिकाकी उग्रता इस हविसे शान्त होतीः है । केवल तत्त्ववादी कहते हैं-रुद्रशब्द मेघगर्जनका आदिकारण विद्युदग्निविशेष है । अम्बि-काशब्दका प्रकृत अर्थ गमनशील अर्थात् जगत् है यही शरद्रूपसे रुद्रकी भगिनी होकर कार्यसाधन करती है । रुद्राध्यायमें मेरा ऋतु आदिमें भी रुद्रका निवास लिखाहै, इससे यह भी होसकताहै मेघनिर्याण होनेसे शरदृतु प्राप्त होतीहै, वही उनकी भगिनीरूप है, प्राचीन कालमें शरद्से ही नवीनवर्ष प्रारंभ होताथा और एकवर्ष बीतनेसे शरीरमें परिवर्तन होताहै यही जरा है । अथवा शरद्में वर्षाके उपरान्त एक नवीन ज्वरप्रारंभ होताहै, जो बड़ा कष्ट करताहै । इसको ही अम्बिकाकृत जरा कहतेहैं, इसमें बहुधा मनुष्य असावधानीसे मृतक होजातेहैं इसके निमित्त हवन अवश्य करना चाहिये और इन्हीं रोगोंकी शान्तिके निमित्त चातुर्मासके अन्तर्गत यह भी हवन है, इस समय भी शरत्कालमें नवदुर्गाओंमें जो हवन होताहै वह अम्बिकादेवीका ही विधान है परन्तु घर घर होनेसे बहुत उपकार होसकताहै, इस मंत्रमें बड़ा गूढ तत्त्व है बुद्धिमान् इसमेंसे बहुतकुछ जानसकते हैं, इस कारण दिग् दर्शनमात्र लिखा है ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

अवं रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ॥ यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ३ ॥

ॐ अवरुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । विराट् पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देव-ता । जपे विनियोगः ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(रुद्रम्-अव) असौ रुद्र इति मनसा तम् अवगत्य (अदीमहि) त्वद-नुग्रहादन्नं भक्षयेम । तथा (त्र्यम्बकम्) त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृशं देवम् (अव) अवगत्यादीमहीत्यनुवर्तते । यद्वाऽन्यदेवताभ्यः पृथक्कृत्य रुद्रमदीमहि अद्यामो भोजयामः (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मान् (वस्यसः) वस्तृतरान् वसनशीलान् (करत्) असौ कुर्यात् (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मान् (श्रेयसः

-करत) ज्ञातिषु प्रशस्यतरान् कुर्यात् । (यथा) यथा च (नः) अस्मान् (व्यवसाययात) सर्वेषु कार्येषु निश्चययुक्तान् कुर्यात् तथैनं जपाम इत्यर्थः । [यजु० ३।५८]

भावार्थ—पापियोंको रुलानेवाले तीननेत्र वा भूलोक, अन्तरिक्षलोक, द्युलोकरूप वा गमनशील वा जिनके नेत्रसे तीनलोक प्रकाशित होते हैं वा जिनके नेत्रप्रकाशसे तीन लोक आकृष्ट होतेहैं अथवा तीन वेद, तीन काल, आधिदैविक आध्यात्मिक, आधिभौतिक ही जिनके नेत्र हैं ऐसे सर्गादिसे क्रीडाकरनेवाले शत्रुजेता प्राणियोंमें आत्मरूपसे वर्तमान द्युतिमान् स्तोत्रोंसे स्तुति किये हुए रुद्रदेवकी और देवताओंसे पृथक् कर वा उत्कृष्ट जानकर सब दुःख नाश करते हैं वा उनके अनुग्रहसे अन्नभक्षण करते हैं वा त्रिनेत्र जान कर उनको भाग देते हैं जिसप्रकार हमको वह उत्तम प्रकारसे निवासकरनेवाले करें, जिस प्रकार हमको ज्ञातियोंमें श्रेष्ठतर करें, जिसप्रकार हमको सब कार्योंमें निश्चययुक्त करें, इस प्रकार इनका जप करते हैं (आशीर्वाद है) ॥ ३ ॥

तत्त्वविचार—जिनकी अम्बिका भगिनी है वह त्र्यंबक होते हैं, तीन लोकमें गमन होनेसे अम्बिका विद्युदग्निविशेष रुद्रदेवताकी भगिनीस्थानीय है ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीनकालोंमें एकरसरूप परमात्माका भजन करना सबको उचित है वह रुद्ररूपसे प्रार्थनीय है धनसंपति वही देताहै तेजकी वृद्धि वही करता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

भेषजमसि । भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ४ ॥

ॐ भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । स्वराड्गायत्री छन्दः । रुद्रो देवता । जपे विनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्—हे रुद्र त्वम् (भेषजम्) औषधवत्सर्वोपद्रवनिवारकः (असि) सर्वप्राणिनां हितकारी भवसि, अतः प्रार्थयामि, अस्मदीयेभ्यः (गवे) (अश्वाय) (पुरुषाय) (भेषजम्) सर्वव्याधिनिवारकमौषधं देहि (मेषायमेष्यै) (सुखम्) क्षेमं देहीति शेषः । सुहितं खेभ्यः प्राणेभ्यः इति सुखम् । अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमप्राप्तिर्भवति (यजु० ३।५९] ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे रुद्र ! आप औषधवत् संपूर्ण उपद्रवोंके निवारण करनेवाले हो इस कारण हमारे गौ, घोडे, पुत्र, पौत्र, भ्राता और परिजनोंके निमित्त सब रोग दूर करनेको औषधि दो वा औषधिरूप प्रकाश करो तथा मेष मेषी आदि पशुओंके उपद्रवरहित जीवनके निमित्त सुखदायक अपना भेषजस्वरूप प्रकाश करो (इस मंत्रसे घरके पशुओंकी क्षेमप्राप्ति होती है) ४ ॥

विशेष-पदार्थविद्यावाले यहां विद्युत्का अर्थ करके कहते हैं कि, विद्युत् कितनी उत्कृष्ट भेषज है, यह भेषजके व्यवसायी ही विशेषरूपसे जानसकतेहैं ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ॥ उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय माऽमुतः ॥ ९ ॥

ॐ त्र्यम्बकमित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । परिक्रमणे विनियोगः ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(सुगन्धिम्) दिव्यगंधोपेतं मर्त्यधर्महीनम् (पुष्टिवर्द्धनम्) धनधान्यादिपुष्टिवर्द्धयितारम् (त्र्यंबकम्) नेत्रत्रयोपेतं शिवम् (यजामहे) पूजयामः । ततो रुद्रप्रसादात् (मृत्योः) अपमृत्योः संसारमृत्योश्च (मुक्षीय) मुक्तो भूयासम् (अमृतात्) स्वर्गरूपान्मुक्तिरूपाच्च (मा) मुक्तो मा भूयासम् अभ्युदयनिःश्रेयसरूपात् फलद्वयान्मम भ्रंशो माभूदित्यर्थः । मृत्योर्मोचने दृष्टान्तः (इव) यथा (उर्वारुकम्) कर्कन्ध्वादेः फलमत्यन्तपक्वं सत् (बन्धनात्) वृन्तात् स्वयमेव मुच्यते तद्वत् त्र्यम्बकप्रसादेन मुक्तो भूयासम् । यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्योऽपि त्र्यंबकमंत्रेणाग्निं त्रिः परियन्ति (पतिवेदनम्) पतिं वेदयतीति तं भर्तुर्लम्भयितारम् (सुगन्धिम्) दिव्यगन्धयुक्तम् (त्र्यंबकम्) देवं शिवम् (यजामहे) पूजयामः (इतः) मातृपितृभ्रातृवर्गात् (मुक्षीय) मुक्ता भूयासम् (उतः) विवाहादूर्ध्वं भविष्यतः पत्युः (मा) मुक्ता मा भूयासम् । जनकस्य गोत्रं गृहं च परित्यज्य पत्युर्गोत्रे गृहे च सर्वदा त्र्यम्बकप्रसादात् वसामीत्यर्थः । सा यदित इत्याह-ज्ञातिभ्यस्तदाह-मामुत इति पतिभ्यस्तदाहेति २।६ २।१४ श्रुतेरितोऽमुतः शब्दाभ्यां पितृपतिवर्गौ ग्राह्यौ । [यजु० ३।६०] "समुद्दिश्य महादेवं त्र्यम्बकं त्र्यंबकेत्यृचा । एतत्पर्वशतं कृत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १ ॥ त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् । तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहुयाच्छंसितव्रतः ॥ २ ॥" ॥ ९ ॥

भावार्थ-दिव्यगंधसे युक्त, मर्त्यधर्महीन उभयलोकोंके फलदाता धनधान्यादिसे पुष्टि बढानेवाले पूर्वोक्तनेत्रत्रयसंपन्न शिवशंकरका पूजन करतेहैं, वह रुद्र हमको मृत्यु, अपमृत्यु, वा संसारके मरणसे मुक्त करे वा छुडावे, जिस प्रकार अपने बंधनसे पकेहुए कर्कटीफल अर्थात् जैसे

पक्वफल अपनी आंवसे टूटकर भूपतित होताहै इस प्रकार शिवकी कृपासे जन्ममरणबंधनसे विमुक्त होजाऊं और स्वर्गरूपमुक्तिसे न छूटूं । अभ्युदय निश्रेयसरूप दोनों फलसे भ्रष्ट न होऊं, पतिके प्राप्त करानेवाले वा संपूर्णगुणसंपन्नसुन्दरपतिके विधान करनेवाले दिव्ययश सौर-भपूर्णधर्माधर्मके ज्ञाता त्र्यंबकदेव शिवको पूजन करताहूं, जैसे उर्वारुकफल बंधनसे छूटजाता है इस प्रकार इस माता पिता भ्रातृवर्गसे वा इनके गोत्रसे छूटकर विवाह उपरान्त पतिके समीपसे मत छुटाओ । आशय यह कि पिताके गोत्र और घरको छोडकर पतिके गोत्र और घरमें शिवजीके प्रसादसे सदा निवास करें ॥ ५ ॥

विशेष-पहला मंत्रही महामृत्युंजय कहलाता है इसको विधिपूर्वक शिवपूजन करके जप करनेसे अपमृत्यु निवारण होती है इसमें संदेह नहीं, और इस मंत्रसे यह भी विदित होता है कि मुक्त होकर फिर संसारमें नहीं आता इस मंत्रसे तीन दिनतक व्रत कर घरकी सौ आहुति दे तो १०० वर्ष जियें ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

एतत्ते॑ रुद्राव॒सन्तेन॑ प॒रो मूज॑व॒तोऽती॑हि ॥ अव॑ततधन्वा॒ पिना॑कावसः॒ कृत्ति॑वासा॒ऽअहि॑ꣳसन्नः शि॒वोऽती॑हि ॥ ६ ॥

ॐ एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वंशायहिंसर्जने विनियोगः ॥ ६ ॥

भाष्यम्-(रुद्र) हे रुद्र (एतत् ते) तव (अवसम्) हविःशेषाख्यं भोज्यम् "अवसशब्देन देशान्तरं गच्छतो मार्गमध्ये तटाकादिसमीपे भोक्तव्य ओदनविशेष उच्यते" तेन सहितस्त्वम् (मूजवतः) पर्वतात् "मूजवान्नाम कश्चित्पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानम्" (परः) परभागवर्ती सन् (अतीहि) अतिक्रम्य गच्छ कीदृशस्त्वम् (अवततधन्वा) अवरोपितधनुष्कः । अस्मद्विरोधिनां त्वया निवारितत्वादित ऊर्ध्वं धनुषि ज्यासमारोपणस्य प्रयोजनाभावादवरोपणमेवेदानीं युक्तं तथा (पिनाकवासः) पिनाकाख्यं त्वदीयं धनुरावस्ते सर्वत आच्छादयतीति पिनाकवासः यथा धनुर्दृष्ट्वा प्राणिनो न बिभ्यति तथा त्वदीयं धनुर्वस्त्रादिना प्रच्छाद्य गच्छेत्यर्थः । हे रुद्र त्वम् (कृत्तिवासाः) चर्माम्बरः (नः) अस्मान् (अहिंसन्) हिंसामकुर्वन् (शिवः) अस्मदीयपूजया सन्तुष्टः कोपरहितो भूत्वा (अतीहि) पर्वतमतिक्रम्य गच्छ । [यजु० ३ । ६१] ॥ ६ ॥

भाषार्थ-हे उक्तगुणसंपन्न महादेव ! यह आपका हविःशेषाख्य भोजन है (देशान्तरको जाते हुए मार्गमें जो तडागादिके समीप बैठकर ओदन आदि भक्ष्य खायाजाता है उसे अवस कहते हैं) इसके साथ तुम हमारे विरोधियोंके निवारण होनेसे ज्या उतारे हुए धनुषको ले अपने पिनाक धनुषको वस्त्रमें छिपाये मूजवान् नाम पर्वतके परभागवर्ती होकर गमन करो अर्थात् इस अपने भागको लेकर दीर्घ गन्तव्यपथ अतिक्रमण कर अपने निवासभूत मुंजवान् नाम पर्वतके शिखरपर उपस्थित हो अथवा तुम्हारा निरन्तर विस्तृत धनुष है तुम अपने तेजसे स्वर्गपर्यन्त आच्छन्न करके गमन करनेमें समर्थ हो तुमको किसी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता नहीं (धनुष छिपाकर जानेका कारण यह कि प्राणी भयभीत न हों अर्थात् रुद्रने अपना धनुष अब उतार लिया) हे रुद्र ! तुम चर्माम्बरधारण किये हो वा संपूर्ण प्राणियोंके अन्तर रहनेसे चर्माम्बरधारी हो हमारी हिंसा न करते अर्थात् हमारी सब शारीरिक विषयोंको अतिक्रम कर रक्षाके अभिप्रायसे हमारी पूजासे सन्तुष्ट वा कोपरहित होनेके कारण कल्याण स्वरूप होकर अपने स्थानमें निवास करो या पर्वतको अतिक्रम करजाओ ॥ ६ ॥

विशेष-शिवके धनुषका नाम पिनाक है गजचर्म धारण करनेसे कृत्तिवास है पौराणिक पदार्थ विद्यावाले कहते हैं पर्वतके ऊपर मेघोंके उदय होनेसे सदा इन्द्र धनुष देखा जाताहै । इस कारण वहाँही रुद्रका निवास स्थान कथन किया है विद्युत्में संपूर्ण शरीरके चर्मान्तवर्ती है इस कारण रुद्रको विद्युत्में होनेसे कृत्तिवास और महादेव कहा है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ॥

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ७ ॥

ॐ त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । उष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता । वपनादौ जपे विनियोगः ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(जमदग्नेः) मुनेः (त्र्यायुषम्) त्रयाणां बाल्ययौवनस्थाविराणामायुषां समाहारस्त्र्यायुषम् । तथा (कश्यपस्य) एतन्नामकस्य प्रजापतेः सम्बन्धि यत् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषम् । तथा (देवेषु) इन्द्रादिषु (यत्) यत् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषमस्ति (तत्) तत्सर्वम् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषम् (नः) अस्माकं यजमानानाम् (अस्तु) भूयात् जमदग्न्यादीनां बाल्यादिषु यादृशं चरितं तादृशन्नो भूयादित्यर्थः । [यजु० ३।६२] ॥ ७ ॥

भाषार्थ-हे रुद्र ! जमदग्नि ऋषिकी जो बाल्य यौवन वृद्धावस्था है तथा कश्यप प्रजापतिकी जैसी तीनों अवस्थाएँ हैं जैसे देवगणकी अवस्थाके चरित्र हैं वह सब त्र्यायुष मुझ यजमानको प्राप्त हों अर्थात् इन पूर्वोक्त महात्माओंकेसे चरित्र हमारे होजायँ ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ निवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ८ ॥

इति सꣳहितायां रुद्रपाठे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ शिवोनामासीत्यस्य नारायण ऋषिः । भुरिग्जगती छन्दः । क्षुरग्रहणे वपने च विनियोगः ॥ ८ ॥

भाष्यम्-हे क्षुर त्वम् (नाम) नाम्ना (शिवः) शान्तः (असि) असि (स्वधितिः) वज्रम् (ते) तव (पिता) पिता (ते) तुभ्यम् (नमः) नमः (अस्तु) भवतु (मा) माम् (माहिꣳसीः) मा नाशय । हे यजमान त्वाम् (निवर्त्तयामि) मुण्डयामि किमर्थम् (आयुषे) जीवनाय (अन्नाद्याय) अन्नभक्षणाय (प्रजननाय) सन्तानाय (रायस्पोषाय) रायो धनं तस्य पोषाय पुष्ट्यै (सुप्रजास्त्वाय) शोभनापत्यतायै (सुवीर्याय) शोभनसामर्थ्याय [यजु० ३।६३] ॥ ८ ॥

भावार्थ-सर्वव्यापी होनेसे क्षुरमें व्याप्त क्षुराधिष्ठित देव ! तुम नामकरके शान्तस्वभाव कल्याण कारक हो वज्र तुम्हारा पालक रक्षक है तुम्हारे निमित्त नमस्कार है मुझको मत आघात करना । हे यजमान ! इस क्रियाके फलसे जीवनके निमित्त अन्नादि भक्षणके निमित्त बहुत प्रजा बहुत धन पुष्टि उत्कृष्ट प्रजननसामर्थ्य प्रशंसनीय बलकी प्राप्तिके निमित्त मुण्डन करताहूं० ॥ ८ ॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

० किसी २ रुद्राष्टकमें यह दो मंत्र विशेष देखे जाते हैं-

मन्त्रः ।

नतमꣳहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

हरिः ॐ उग्रश्चं भीमश्चध्वान्तश्चधुनिश्च। सासुह्वांश्चांभियुग्वाचंविक्षिपःस्वाहा ॥ १ ॥

ॐ उग्रश्चेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । मरुतो देवताः । अरण्ये विमुखपुरोडाशहोमे वि० ॥ १ ॥

भाष्यम्–(उग्रः) उत्कृष्टः (च) (भीमः) बिभेत्यस्मादसौ भीमः (च) (ध्वान्तः) ध्वनति शब्दं करोतीति ध्वान्तः (च) (धुनिः) धूनयति कंपयति शत्रूनिति धुनिः (च) (सासह्वान्) सहतेः शत्रूनभिभवति स सह्वान् (च) (अभियुग्वा) अभियुनक्ति परमतसंमुखं योगं प्राप्नोत्यभियुग्वा (च) (विक्षिपः) विविधं क्षिपति रिपूनिति विक्षिपः, एते उग्रादिनामकाः सप्त मरुतः तेभ्यः (स्वाहा) सुहुतमस्तु [यजु० ३९ ।७] ॥ १ ॥

भाषार्थ–उत्कृष्ट क्रोधन स्वभाव और जिससे भय लगे भयानक स्वभाव और ध्वनिकारी और शत्रुओंको कम्पानेवाले और सबके तिरस्कारमें समर्थ तथा सब वस्तुओंके सहित योग वाले और प्राणीके शरीर वृद्धि आदि और वृक्षशाखादिक्षेपणकारी वा शत्रुओंके नाशक वायु देवताकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं भली प्रकार गृहीत हो ॥ १ ॥

भावार्थ–जिस परमात्माने इस सब जगत्को उत्पन्न किया है वह तुमसे भिन्न होकर तुम्हारे हृदयमें स्थित है । तुम जो अज्ञान और वृथा जल्पनामें प्रवृत्त हो और पुत्रपौत्रलाभादिसे तृप्त तथा स्वर्ग फललोभमात्रके लिये यज्ञानुष्ठान करते विचरण करते हो, इस कारण उसका तत्त्व अवगत नहीं होता, वह निष्काम कर्म और तत्त्वविचारसे ध्यानमें आता है ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

विश्वकर्म्माह्यजंनिष्टदेवऽआदिद्गन्धर्वोऽअभवद्द्वितीयः ॥ तृतीयःपिताजनितौषधीनामुपांगर्भंव्यदधात्पुरुत्रा ॥ २ ॥

भाषार्थ–विश्वकर्माने प्रथम देवगणकी सृष्टि की, गन्धर्वगण उसकी दूसरी सृष्टि है, पर्जन्य उसकी तीसरी सृष्टि है, यह औषधियोंके उत्पादक पर्जन्य अनेक स्थलोंमें गर्भ धारण करते हैं ।

मन्त्रः ।

अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ॥ शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ २ ॥

ॐ अग्निमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । श्लक्ष्मानो देवता । अश्वाङ्गदेवतास्थग्रहगृहीताज्याहुतिदाने वि० ॥ २ ॥

भाष्यम्—(हृदयेन) अंगेन (अग्निम्) अग्निदेवं प्रीणामि (हृदयाग्रेण) हृदयस्याग्रभागेन (अशनिम्) अशनिं देवं प्रीणामि (कृत्स्नहृदयेन) समग्रहृदयेन (पशुपतिम्) पशुपतिं देवम् (यक्ना) यकृता (भवम्) भवं देवम् (मतस्नाभ्याम्) मतस्ने हृदयास्थिविशेषौ ताभ्याम् (शर्वम्) शर्वं देवम् (मन्युना) अश्वसम्बन्धिक्रोधेन (ईशानम्) ईशानं देवम् (अन्तःपर्शव्येन) अन्तर्वर्तमानेन पर्शव्येन पार्श्वास्थिसम्बन्धिना मांसेन (महादेवम्) महादेवम् (वनिष्ठुना) वनिष्ठुः स्थूलान्त्रं तेन (उग्रं देवम्) उग्रं देवम् (वशिष्ठहनुः) वशिष्ठस्य देवस्य हनुः कपोलैकदेशो ज्ञातव्यः । अथवा वसिष्ठाया हनुः कपोलाधोदेशः 'तत्परा हनुः' इत्यमरः । वसिष्ठहन्वा (कोश्याभ्याम्) कोशो हृदयकोशः तत्स्थाभ्यां मांसपिण्डाभ्यां च (शिंगीनि) शिंगिसंज्ञानि दैवतानि प्रीणामि [यजु० ३९ । ८] ॥ २ ॥

भाषार्थ—हृदयद्वारा अग्नि देवताको प्रसन्न करताहूँ १, हृदयके अग्रभागसे अशनिदेवताको २, संपूर्ण हृदयसे पशुपति देवताको ३, यकृत् (कालखंड) द्वारा भव देवताको प्रसन्न करताहूँ ४, हृदयास्थिविशेषद्वारा शर्व देवताको प्रसन्न करताहूँ, ५ क्रोधाधारद्वारा ईशान देवताको प्रसन्न करताहूँ ६, पार्श्वअस्थिके मध्यगत मांससे महादेवको प्रसन्न करताहूँ ७, स्थूलान्त्रसे उग्रदेवको प्रसन्न करताहूँ ८, कपोलके एकदेश वा अधोदेश और हृदयकोशमें स्थित मांस पिण्डद्वारा शिङ्गी देवताको प्रसन्न करताहूँ ९, (हनुद्वारा वशिष्ठको प्रसन्न करताहूँ, ऐसा भी किसीका मत है १०) ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

उग्रँल्लोहितेन मित्रँ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ॥ भवस्य कण्ठ्यँ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ३ ॥

ॐ उग्रमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । यजमानो देवता । वि० प्र० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(लोहितेन) असृजा (उग्रम्) उग्रं देवं प्रीणामि (सौव्रत्येन) शोभनं व्रतं कर्म यस्य सः सुव्रतस्तस्य भावः सौव्रत्यं शोभनकृत्यादिकर्मकर्तृत्वं तेन (मित्रम्) मित्रं देवं प्रीणामि (दौर्व्रत्येन) दुष्टं स्खलनोच्छूनादि व्रतं यस्य स दुर्व्रतः तस्य भावो दौर्व्रत्यं तेन (रुद्रम्) रुद्रं देवं प्रीणामि (प्रक्रीडेन) प्रकृष्टं क्रीडनं प्रक्रीडः तेन (इन्द्रम्) इन्द्रं देवं प्रीणामि (बलेन) सामर्थ्येन (मरुतः) मरुतो देवान् प्रीणामि (प्रमुदा) प्रकृष्टा मुत् हर्षः प्रमुत् तया (साध्यान्) साध्यान्देवान् प्री० (भवस्य) अत्र षष्ठ्यन्तो देवः अंगं प्रथमान्तम् भवदेवस्य (कण्ठ्यम्) कण्ठे भवं मांसमस्तु विभक्तिव्यत्ययो वा कण्ठ्येन भवं देवं प्रीणामि । एवमग्रेऽपि (अन्तः पार्श्व्यम्) पार्श्वस्यान्तर्मध्ये भवं मांसमन्तः पार्श्व्यम् (रुद्रस्य) रुद्रस्यास्तु (यकृत्) कालखण्डम् (महादेवस्य) महादेवस्यास्तु (वनिष्ठुः) स्थूलान्त्रम् (शर्वस्य) शर्वस्यास्तु (पुरीतत्) हृदयाच्छादकमन्त्रम् (पशुपतेः) पशुपतेर्देवस्यास्तु [यजु० ३९।९] ॥ ३ ॥

भावार्थ-लोहितद्वारा उग्रदेवताको प्रसन्न करताहूँ १, श्रेष्ठगत्यादि कर्म करनेवालेसे मित्र देवताको प्रसन्न करताहूँ २, जो शरीरका शोणित दुर्व्रत्यकरनेको प्रवृत्त होताहै उससे रुद्रदेवताको प्रसन्न करताहूँ ३, क्रीडा करनेमें समर्थ रक्तद्वारा इन्द्रको प्रसन्न करताहूँ ४, पराक्रममें समर्थ रक्तद्वारा मरुतोंको प्रसन्न करताहूँ ५, प्रसन्नता करनेवालेद्वारा साध्यदेवताको प्रसन्न करताहूँ ६, कंठमें होनेवालेसे भवदेवताको प्रसन्न करताहूँ ७, पार्श्वकी मध्यरक्तिमासे रुद्रको प्रसन्न करताहूँ ८, यकृत्के रक्तद्वारा महादेवको प्रसन्न करताहूँ ९, स्थूलान्त्रद्वारा शर्वदेवताको प्रसन्न करताहूँ १०, हृदयाच्छादकनाडीकी रक्तिमासे पशुपतिको प्रसन्न करताहूँ ११, अर्थात् सर्वांग देवताओंके हैं इससे सर्वस्वत्याग है ममत्व कुछ नहीं है । इसमें स्थानगत रुधिरके गुण कहे हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा ॥ माᳬसेभ्यः स्वाहा माᳬसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ॥ रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ लोमभ्य इत्यस्य पंचाक्षरमंत्राणां प्रजापतिर्ऋषिः । दैवी पंक्तिश्छन्दः । अङ्गानि देवता । चतुरक्षरमन्त्राणां दैवी बृहती० षडक्षरमन्त्राणां दैवी त्रिष्टुप्० । अष्टाक्षरमन्त्राणां दैवी त्रिष्टुप्० प्रायश्चित्ताहुतिदाने विनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्–लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशल्लोमादीन्यंगानि (लोमभ्यः स्वाहा) लोमानि जुहोमीत्यर्थः । (त्वचे) त्वचे (लोहिताय) लोहिताय (मेदोभ्यः) मेदो धातुविशेषः (मांसेभ्यः) मांसेभ्यः (स्नावभ्यः) स्नावानः स्नायवो नसाः (अस्थभ्यः) अस्थिभ्यः (मज्जभ्यः) मज्जा षष्ठो धातुः (रेतसे) रेतो वीर्यम् (पायवे) पायुर्गुदम् । [यजु० ३९।१०] ॥ ४ ॥

भाषार्थ–लोमोंके निमित्त सुहुत हो १, व्यष्टिलोमोंके निमित्त सहुत हो २, त्वचाके निमित्त सुहुत हो ३, व्यष्टित्वचाके निमित्त सुहुत हो ४, लोहितके निमित्त सुहुत हो ५, लोहितके निमित्त सुहुत हो ६, मेदके निमित्त सुहुत हो ७, मेदके० ८, मांसके निमित्त सुहुत हो ९, मांसके० १०, स्नायुओंके निमित्त सुहुत हो ११, स्नायुके निमित्त० १२, अस्थियोंके निमित्त सुहुत हो १३, अस्थियोंके० १४, मज्जाके निमित्त श्रेष्ठ होम हो १५, मज्जाके निमित्त सुहुत हो १६, वीर्यके निमित्त सुहुत हो १७, गुदाके निमित्त सुहुतहो ॥ १८ ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

आयासाय स्वाहां प्रायासाय स्वाहां संयासाय स्वाहां वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहां ॥ शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहां ॥ ५ ॥

ॐ आयासायेत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ ५ ॥

भाष्यम्-(आयासाय) आयासादयो देवविशेषाः आयासाय संयासाय वियासाय उद्यासाय शुचे, शोचते, शोचमानाय, शोकाय, देवविशेषाय (स्वाहा) सुहुतमस्तु । [यजु० ३९।११] ॥ ५ ॥

भावार्थ-आयासदेवताके निमित्त सुहुत हो १, प्रायासके निमित्त सुहुत हो २, संयासदेवताके निमित्त सुहुत हो ३, वियासदेवताके निमित्त सुहुत हो ४, उद्यासदेवताके निमित्त सुहुत हो ५, शुचदेवताके निमित्त सुहुत हो ६, शोचत्देवताके निमित्त सुहुत हो ७, शोचमानके निमित्त सुहुत हो ८, शोकके निमित्त सुहुत हो ९ ॥ ५ ॥

विशेष-देहपरिश्रमको भोग हो, इन्द्रियपरिश्रमको भोग हो, मानसपरिश्रमको भोग हो, बुद्धिपरिश्रमको भोग हो, प्राणपरिश्रमको भोग हो, यह आयासादि पांचोंका अर्थ है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहां तप्ताय स्वाहां घर्माय स्वाहां ॥ निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहां भेषजाय स्वाहां ॥ ६ ॥

ॐ तपस इत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ ६ ॥

भाष्यम्-(तपसे) तप्यते, तप्यमानाय, तप्ताय, घर्माय, निष्कृत्यै, प्रायश्चित्यै, भेषजाय स्वाहा । [यजु० ३९।१२] ॥ ६ ॥

भावार्थ-तपके निमित्त सुहुत हो १, तप्यत्के निमित्त सुहुत हो २, तप्यमानके निमित्त सुहुत हो ३, तप्तके निमित्त सुहुत हो ४, घर्मके निमित्त सुहुत हो ५, निष्कृतिके निमित्त

सुहुत हो ६, प्रायश्चित्तके निमित्त सुहुत हो ७, भेषजके निमित्त भोगसमर्पण हो ८ ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ।
ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ७ ॥

इति संहितायां रुद्रपाठे सप्तमोऽध्यायः ७॥

ॐ यमायेति विनियोगः पूर्ववत् ॥ ७ ॥

अन्वयः–(यमाय) प्रेतपतये (अन्तकाय) कालाय (मृत्यवे) मृत्युनामकाय (ब्रह्मणे) परमात्मने (ब्रह्महत्यायै) ब्रह्महत्यायै (विश्वेभ्यो देवेभ्यः) एतेभ्यो देवेभ्यः (स्वाहा) सुहुतमस्तु (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्यावापृथिवीभ्याम् (स्वाहा) सुहुतमस्तु । इत्यन्तामाहुतिं जुहुयात् [यजुः ३९।१३] ॥ ७ ॥

भाषार्थ–यमके निमित्त सुहुत हो १, अन्तकके निमित्त सुहुत हो २; मृत्युके निमित्त सुहुत हो ३, ब्रह्मके निमित्त सुहुत हो ४, ब्रह्महत्याके निमित्त सुहुत हो ५, संपूर्णदेवताओंके निमित्त सुहुत हो ६, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त जितने देवता हैं उन सबकी प्रीतिके निमित्त यह शेष पूर्णाहुति दीजाती है भलीप्रकारसे गृहीत हो ॥ ७ ॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितः सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

हरिः ॐ ॥ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् १

ॐ वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः शक्वरी छन्दः । अग्निर्देवता । वसोर्धाराहुतिहोमे विनि० ॥ १ ॥

भाष्यम्–यजमान आज्यसंस्कृत्यार्थपरिमाणया महत्यौदुम्बर्या स्रुचा महता स्रुवेण पंचवारं गृहीतमाज्यमरण्येनूच्ये पुरोडाशे तदुपरि सन्ततं विच्छिन्नधारं यथातथा वसोर्धारासंज्ञामाहुतिं जुहोति । घृतेऽग्निप्राप्ते सति वाजश्चेत्यादिहोममंत्रारम्भः । चकाराः समुच्चयार्थाः । (वाजः) अन्नम् (प्रसवः) अन्नदानाऽभ्यनुज्ञा दीयतां भुज्यतामिति, (प्रयतिः) शुद्धिः (प्रसितिः) बन्धनमन्नविषयौत्सुक्यम् (धीतिः) ध्यानम् (क्रतुः) संकल्पो यज्ञो वा (स्वरः) साधुशब्दः (श्लोकः) पद्यबन्धः स्तुतिर्वा (श्रवः) वेदमन्त्राः श्रवणसामर्थ्यं वा (श्रुतिः) ब्राह्मणम् श्रवणसामर्थ्यं वा (ज्योतिः) प्रकाशः (स्वः) स्वर्गः एते (मे) मम (यज्ञेन) यज्ञेन (कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । स यज्ञो वाजादीनां दातास्मभ्यं भवतीत्यर्थः । एवमग्रे सर्वत्र । [यजु० १८ । १] ॥ १ ॥

भाषार्थ–इस यज्ञके फलसे देवगण मेरे निमित्त अन्न और मेरे निमित्त (दीयतां भज्यताम्) इस प्रकार अन्नदानकी अनुज्ञा और मेरे निमित्त; शुद्धि अन्न विषयक उत्सुकता, ध्यान विचार और संकल्प वा यज्ञ और साधुशब्द, पद्यबंधन वा स्तुति और वेदमंत्रोंका श्रवण वा उसकी सामर्थ्य, ब्राह्मणश्रवणकी सामर्थ्य, प्रकाश और स्वर्ग प्राप्त करें, अर्थात् यज्ञके फलसे यह सब पदार्थ हमको प्राप्त हों ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

ॐ प्राण इत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदतिजगती छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्–(प्राणः) ऊर्ध्वसंचारी शरीरवायुः (अपानः) अधोवृत्तिर्वायुः (व्यानः) सर्वशरीरगामी वायुः (असुः) प्रवृत्तिमान् वायुः (चित्तं) मानसः संकल्पः (आधीतम्) बाह्यविषयज्ञानम् (वाक्) वागिन्द्रियम् (मनः) मनिन्द्रम् (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रियम् (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रियम् (दक्षः) ज्ञानेन्द्रियकौशलम् (बलम्) कर्मेन्द्रियकौशलम् एतानि (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । [यजु० १८ । २] ॥ २ ॥

भावार्थ—मेरे निमित्त अवश्य प्राण (ऊर्ध्ववायु) और मेरे निमित्त अपान (अधोवायु-प्रवृत्ति) और मेरे निमित्त शरीर संचारी वायु, प्रवृत्तिमान् वायु, मानससंकल्प, बाह्यविषय-ज्ञान, वागिन्द्रियसामर्थ्य, मन-चक्षु-इन्द्रिय-सामर्थ्य, श्रोत्रइन्द्रियसामर्थ्य, ज्ञानेन्द्रियकी कुशलता और बल इस यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म्म च मे वर्म्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूᳬषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

ॐ ओज इत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिक्छक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्—(ओजः) बलहेतुरष्टमो धातुः (सहः) शारीरं बलं सम्पन्नाभिभवित्वं वा (आत्मा) परमात्मा (तनूः) रूप्यं वपुः (शर्म) सुखम् (वर्म) कवचम् (अंगानि) हस्ताद्यवयवाः (अस्थीनि) शरीरंगतानि (परूंषि) अंगुल्यादिपर्वाणि (शरीराणि) पूर्वानुक्ताः शरीरावयवाः (आयुः) जीवनम् (जरा) वार्धक्यान्तमायुः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । यजु० १८।३] ॥ ३ ॥

भावार्थ—बलहेतु शरीरकी आठवीं धातु, शत्रुका तिरस्कार करनेवाला बल, आत्मज्ञान मनोहर शरीर, सुख, कवच हस्तादिअवयवोंकी दृढता, शरीरकी अस्थियोंकी दृढता, अंगुल्यादि पर्वोंकी दृढता, शरीरका आरोग्य, जीवन और वार्धक्यपर्यन्त आयु मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता संपादन करें ॥ ३ ॥

मन्त्रः ।

ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघि-

मा चं मे ह्यृञ्च मे ब्रह्मिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

ॐ ज्यैष्ठमित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदत्यष्टिश्छं० अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्-(ज्यैष्ठ्यम्) प्रशस्ततमम् (आधिपत्यम्) स्वामित्वम् (मन्युः) मानसः क्रोधः (भामः) भ्रूविक्षेपादिलिंगको बाह्यः क्रोधः । (अमः) न मीयत इत्यमः अपरिमेयत्वम् (अम्भः) शीतमधुरं जलम् (जेमा) जयस्य भावो जयसामर्थ्यम् (महिमा) महतो भावो महिमा महत्त्वम् (वरिमा) उरोर्भावो वरिमा प्रजादिविशालता (प्रथिमा) पृथोर्भावः गृहक्षेत्रादिविस्तारः (वर्षिमा) दीर्घजीवित्वम् (द्राघिमा) अविच्छिन्नपरम्परत्वम् (वर्द्धम्) प्रभूतमन्नधनादि (वृद्धिः) विद्यादिगुणैरुत्कर्षः एते मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । [यजु० १८ । ४] ॥ ४ ॥

भाषार्थ-और बडाई, स्वामित्व, मानसकोप, बाह्यकोप, गंभीरता, अपरिमेयत्व, शीत, मधुर जल जयकी सामर्थ्य, महत्त्व, प्रजादिविशालता, गृहक्षेत्रादिविस्तार, दीर्घजीवित्व यह सब मेरे निमित्त प्राप्त हों, वंशपरंपराकी प्राप्ति, बहुत अन्न धनादि, विद्यादिगुणकी उत्कर्षता यज्ञके द्वारा संपादन करें अर्थात् दें ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

ॐ सत्यमित्यस्य देवा ऋषयः । विराट् शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ५ ॥

भाष्यम्-(सत्यम्) यथार्थभाषित्वम् (श्रद्धा) परलोकविश्वासः (जगत्) जंगमं गवादि (धनम्) कनकादि (विश्वम्) स्थावरम् (महः) दीप्तिः (क्रीडा) अक्षद्यूतादिः (मोदः) क्रीडादर्शनजो हर्षः (जातम्) पुत्रोत्पन्नमपत्यम् (जनिष्यमाणम्) भविष्यदपत्यम् (सूक्तम्) ऋक्समूहः (सुकृतम्) ऋक्पाठजन्यं शुभादृष्टम् एते (यज्ञेन कल्पन्ताम्) समर्प्यन्ताम् । [यजु० १८ । ५] ॥ ५ ॥

भाषार्थ-और मेरे निमित्त यथार्थभाषण, परलोकविश्वास, जंगमगवादि, सुवर्णादि स्थावर पदार्थ, दीप्ति, क्रीडा, क्रीडादर्शनका हर्ष, पुत्रसे उत्पन्न अपत्य, होनेवाले अपत्यसन्तान, ऋचाओंका समूह, ऋचाओंके पाठसे शुभअदृष्ट देवताओं द्वारा इस यज्ञके फलसे प्राप्त हो॥५॥

मन्त्रः ।

ऋतञ्च मेऽमृतञ्च मेऽयक्ष्मञ्च मेऽनामयच्च मे जीवा-
तुश्च मे दीर्घायुत्वञ्च मेऽनमित्रञ्च मेऽभयञ्च मे सु-
खञ्च मे शयनञ्च मे सूषाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन

कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

ॐ ऋतमित्यस्य देवा ऋषयः । भुरिगतिशक्करी छंदः । अग्नि-
र्देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्-(ऋतम्) यज्ञादिकर्म (अमृतम्) तत्फलभूतं स्वर्गादि (अयक्ष्मः) यक्ष्मणोऽभावोऽयक्ष्मं धातुक्षयादिरोगाभावः (अनामयत्) सामान्यव्याधिराहित्यम् (जीवातुः) व्याधिनाशकमौषधम् (दीर्घायुत्वम्) बहुकालमायुः (अनमित्रम्) शत्रुराहित्यम् (अभयम्) भीतिराहित्यम् (सुखम्) आनन्दः (शयनम्) संस्कृता शय्या (सूषाः) शोभन उषः स्नानसंध्यादियुक्तः प्रातःकालः (सुदिनम्) यज्ञदानाध्ययनादियुक्तं सर्वं दिनम् एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सिध्यन्तु [यजु० १८ । ६] ॥ ६ ॥

भाषार्थ-यज्ञादि कर्म, उसका फल स्वर्गादि, धातुक्षयादि रोगका अभाव, सामान्यव्याधिका अभाव, व्याधिनाशक औषधि, दीर्घायु, शत्रुओंका अभाव, निर्भयता, आनन्द, सजाई हुई सेज, संध्यावंदनादियुत सुप्रभात और यज्ञदानाध्ययनादियुक्त संपूर्ण दिन इस यज्ञके फलसे देवता यह सब मेरे निमित्त प्रदान करें ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वञ्च
मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रञ्च मे सूश्च मे प्रसू-
श्च मे सीरञ्च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

ॐ यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदतिजगती छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(यन्ता) अश्वादेर्नियन्ता (धर्ता) पोषकः पित्रादिः (क्षेमः) विद्यमानधनस्य रक्षणशक्तिः (धृतिः) आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम् (विश्वम्) सर्वानुकूल्यम् (महः) पूजा (संवित्) वेदशास्त्रादिज्ञानम् (ज्ञात्रम्) विज्ञानसामर्थ्यम् (सूः) पुत्रादिप्रेरणसामर्थ्यम् (प्रसूः) पुत्रोत्पत्त्यादिसामर्थ्यम् (सीरम्) हलादिकृषिकृतधान्यनिष्पत्तिः (लयः) कृषिप्रतिबन्धनिवृत्तिः । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।७] ॥ ७ ॥

भाषार्थ-अश्वआदिका नियन्तृत्व, प्रजाकी पालनशक्ति, विद्यमानधनकी रक्षणशक्ति, आपत्तिमें भी स्थिरचित्तता, सबकी अनुकूलता, पूजासत्कार, वेदशास्त्रादिका ज्ञान, विज्ञानकी सामर्थ्य, आज्ञाप्रदान वा पुत्रादिप्रेरणकी सामर्थ्य, पुत्रोत्पत्ति आदिकी सामर्थ्य, कृषिआदिके उपयोगी हलादि वा कृषिकृत धान्यकी प्राप्ति और कृषिके प्रतिबंधकी निवृत्ति, अनावृष्टिका अभाव यह सब यज्ञद्वारा अर्थात् इस यज्ञके फलसे मेरे निमित्त देवता प्रदान करें ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

शं चं मे मयश्च मे प्रियं चं मेऽनुकामश्चं मे कामश्च मे सौमनसश्चं मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं चं मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

ॐ शमित्यस्य देवा ऋषयः । विराट्शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्-(शम्) ऐहिकं सुखम् (मयः) आमुष्मिकं सुखम् (प्रियम्) प्रीत्युत्पादकं वस्तु (अनुकामः) अनुकूलयत्नसाध्यः पदार्थः (कामः) विषयभोगजनितं सुखम् (सौमनसः) मनःस्वास्थ्यकरो बन्धुवर्गः (भगः) सौभाग्यम् (द्रविणम्) धनम् (भद्रम्) ऐहिकं कल्याणम् (श्रेयः) पारलौकिकम् (वसीयः) निवासयोग्यो वसुमान् गृहादिः (यशः) कीर्तिः । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) क्लृप्ता भवन्तु । [यजु० १८। ८] ॥ ८ ॥

भावार्थ-इस लोकका सुख, परलोकका सुख, प्रीतिआदिकी उत्पादक वस्तु, अनुकूल यत्न-से साध्य पदार्थ, विषयभोगजनित सुख, मनके स्वास्थ्यकारी बंधुवर्ग, सौभाग्य, धन इस लोकका कल्याण, पारलौकिक कल्याण, निवासयोग्य धनयुक्त गृहादि और कीर्ति यह सब मेरे निमित्त देवता यज्ञके फलसे प्रदान करें ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

ऊर्क्चमेसूनृताचमेपयश्चमेरसश्चमेघृतञ्चमेमधुचमेसग्धिश्चमेसपीतिश्चमेकृषिश्चमेवृष्टिश्चमेजैत्रञ्चमऽऔद्भिद्यञ्चमेयज्ञेनक-ल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

ॐ ऊर्क्चेत्यस्य देवा ऋषयः । शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(ऊर्कंच) अन्नम् (सूनृता) प्रिया सत्या वाक् (पयः) दुग्धम् (रसः) सारः (घृतम्) आज्यम् (मधु) क्षौद्रम् (सग्धिः) बन्धुभिः सह भोजनम् (सपीतिः) बन्धुभिः सह पानम् (कृषिः) तत्कृतधान्यसिद्धिः (वृष्टिः) धान्यनिष्पादिकानुकूला (जैत्रम्) जयसामर्थ्यम् (औद्भिद्यम्) आम्रादिवृक्षोत्पत्तिः एते मम यज्ञेन कल्पन्ताम् । [यजु० १९।९] ॥ ९ ॥

भावार्थ-अन्न, प्रियसत्यवाक्य, दूध, दुग्धसार, घृत, शहत वा मधुर पदार्थ, बांधवोंके साथ एकत्र भोजन, बंधुजनोंके साथ एकत्र पान, कृषिद्वारा धान्यसिद्धि, धान्य उत्पन्न होनेकी अनुकूल वृष्टि, जयकी सामर्थ्य और आम्रादिवृक्षोंकी उत्पत्ति, यह सब इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त प्रदान करें ॥ ९ ॥

मन्त्रः ।

रयिश्चमेरायश्चमेपुष्टञ्चमेपुष्टिश्चमेविभुचमेप्रभुचमेपूर्णञ्चमेपूर्णतरञ्चमेकुयवञ्चमेऽक्षितञ्चमेऽन्नञ्चमेऽक्षुच्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १० ॥

ॐ रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यच्छक्करी छन्दः । अग्निर्देवता-वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्-(रयिः) सुवर्णम् (रायः) मुक्तादिमणयः (पुष्टम्) धनपोषः (पुष्टिः) शरीरपोषकः (विभुः) व्याप्तिसामर्थ्यम् (प्रभुः) ऐश्वर्यम् (पूर्णम्) धनपुत्रादि-बाहुल्यम् (पूर्णतरम्) अत्यंतं पूर्णतरं गजतुरगादिबाहुल्यम् (कुयवम्) कुत्सित-धान्यमपि (अक्षितम्) क्षयहीनं धान्यादि (अन्नम्) ओदनादि (क्षुत्) मुक्ता-न्नपरिपाकः एते (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । [यजु० १८।१०] ॥१०॥

भाषार्थ-सुवर्ण, मोती आदि, धनकी पुष्टि, शरीरकी पुष्टता, व्याप्तिसामर्थ्य, ऐश्वर्य वा प्रभुताकी सामर्थ्य, धनपुत्रादिकी बहुतायत, गजतुरंगआदिकी बहुतायत, निकृष्टयव वा नि-कृष्टयवोंसे मिले व्रीहि आदि अन्न, क्षयहीन धान्यादि, चावल, भात आदि, और भोजन किये अन्नपाक, यह सब मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता कल्पना करें ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सु-गं च मे सुपथ्यं च मऽऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे य-ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

ॐ वित्तमित्यस्य देवाः । भुरिक्छक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-(वित्तम्) पूर्वलब्धं धनम् (वेद्यम्) लब्धव्यम् (भूतम्) पूर्वसिद्धं क्षेत्रादि (भविष्यत्) सम्पत्स्यमानं क्षेत्रादि (सुगम्) सुखेन गम्यते यत्र तत्सुगं सुगम्यो देशः (सुपथ्यम्) शोभनं हितम् (ऋद्धम्) समृद्धं यज्ञफलम् (ऋद्धिः) यज्ञादिसमृद्धिः (क्लृप्तम्) कार्यक्षेमं द्रव्यादि (क्लृप्तिः) स्वकार्यसामर्थ्यम् (मतिः) पदार्थमात्रनिश्चयः (सुमतिः) दुर्घटकार्यादिषु निश्चयः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्प-न्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।११ ॥ ११ ॥

भाषार्थ-पूर्वलब्ध धन, संपद्यमान धन, पूर्वसिद्ध क्षेत्रादि, भविष्यकालमें होनेवाले क्षेत्रादि सुखगम्य देश वा सुखबोधकी सामर्थ्य, शोभनहित, समृद्धयज्ञका फल, यज्ञादिकी समृद्धि, कार्यसाधक अपर्याप्त धन द्रव्य, स्वकार्यसाधनसामर्थ्य, पदार्थमात्रका निश्चय और दुर्घटका-र्यादिका निश्चय यह सब मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता प्रदान करें ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

ॐ व्रीहय इत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिगतिशक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्-(व्रीहयः) व्रीहयः (यवाः) यवाः (माषाः) माषाः (तिलाः) तिलाः (मुद्गाः) मुद्गाः (खल्वाः) चणकाः लङ्काश्च (प्रियंगवः) कंगवः प्रसिद्धाः (अणवः) चीनकाः (श्यामाकाः) तृणधान्यानि ग्राम्याणि कोद्रवत्वेन प्रसिद्धानि (नीवाराः) तृणधान्यान्यरण्यानि (गोधूमाः) गोधूमाः (मसूराः) मसूराश्च एते धान्यविशेषाः (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।१२] ॥ १२ ॥

भाषार्थ-इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको व्रीहिधान्य प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको जौ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उडद प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तिल प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मूँग प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चना प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको कंगनी प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चीनक तंदुल प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तृणधान्य श्यामाक प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको नीवार धान्य प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको गेहूँ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मसूर प्रदान करैं ॥ १२ ॥

मन्त्रः ।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

ॐ अश्मेत्यस्य देवा ऋषयः। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। अग्निर्देवता। वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम्–(अश्मा) पाषाणः (मृत्तिका) प्रशस्ता मृत् (गिरयः) क्षुद्रपर्वताः गोवर्द्धनार्बुदरैवतकादयः (पर्वताः) महान्तो मंदरहिमालयादयः (सिकताः) शर्कराः (वनस्पतयः) पुष्पं विना फलवन्तः पनसोदुम्बरादयः (हिरण्यम्) सुवर्णम् रजतं वा (अयः) लोहम् (श्यामम्) ताम्रलोहम् (लोहम्) लोहं कालायसम् (सीसम्) सीसं प्रसिद्धम् (त्रपु) रंगम् एते कार्यविशेषेषु (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) समुपद्यन्ताम् [यजु० १८।१३] ॥ १३ ॥

भावार्थ–इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पाषाण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको श्रेष्ठ मृत्तिका प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको छोटे पर्वत प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मन्दरादि बडे पर्वत प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बालू प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वनस्पति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सुवर्ण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको लोहा प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तांबा प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको काँसी प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सीसा प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको राँग प्रदान करें अर्थात् मनुष्योंको इन वस्तुओंसे कार्य कौशल करके अपनी उन्नति करनी चाहिये ॥ १३ ॥

मन्त्रः।

अ॒ग्निश्च॑ मु॒ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च मु॒ऽओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मेऽकृष्टप॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ऽआर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तं च॑ मे वि॑त्तिश्च मे भू॒तं च॑ मे भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवा ऋषयः। निचृदष्टिश्छन्दः। अग्निर्देवता। वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्–(अग्निः) पृथिवीस्थो वह्निः (आपः) अन्तरिक्षस्थानि जलानि (वीरुधः) गुल्माः (ओषधयः) फलपाकान्ताः (कृष्टपच्याः) भूमिकर्षणबीजवापादिकर्मभिर्निष्पाद्या ओषधयः (अकृष्टपच्याः) स्वयमेवोत्पद्यमानाः नीवारगवेधुकादयः (ग्राम्याः) ग्रामे भवाः (पशवः) गोऽश्वमहिषाजाविगर्दभोष्ट्रादयः (आरण्याः) अरण्ये भवाः पशवः हस्तिसिंहशरभमृगगवयमर्कटादयः (वित्तम्) पूर्वलब्धम्

(वित्तिः) भाविलाभः (भूतम्) जातपुत्रादिकम् (भूतिः) ऐश्वर्यं स्वार्जितम् । एतानि (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् [यजु० १८।१४] ॥ १४ ॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्निकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको जलकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको लता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको फल पकनेतक रहनेवाली औषधि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको जोतने बोनेसे प्राप्त होनेवाली औषधि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको स्वयं उत्पन्न होनेवाले नीवार गवेधुकादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बिडालादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको हाथी आदि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पूर्वलब्ध प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको होनहार लाभ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको विद्यमान पुत्रादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ १४ ॥

मन्त्रः ।

वसु॑ च मे वस॒तिश्च॑ मे॒ कर्म॑ च मे॒ शक्ति॑श्च मे॒ऽर्थ॑श्च म॒ऽएम॑श्च मऽइ॒त्या च॑ मे॒ गति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

ॐ वसुचेत्यस्य देवा ऋषयः । विराडार्षी बृहती छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्—(वसु) धनं गवादिकम् (वसतिः) वासस्थानं गृहम् (कर्म) अग्निहोत्रादि (शक्तिः) तदनुष्ठानसामर्थ्यम् (अर्थः) अभिलषितः पदार्थः (एमः) प्राप्तव्योऽर्थः (इत्या) भावे क्यप् अयनमिष्टप्राप्त्युपायः (गतिः) इष्टप्राप्तिः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।१५] ॥ १५ ॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको धन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वासस्थान (गृह) प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्निहोत्रादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उसके अनुष्ठानकी सामर्थ्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अभिलषित पदार्थ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्राप्तियोग्य अर्थ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इष्ट प्राप्तिका उपाय प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इष्टकी प्राप्ति प्रदान करें ॥ ॥ १५ ॥

मन्त्रः ।

अ॒ग्निश्च॑ मऽइन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च मऽइन्द्र॑श्च मे सवि॒-

तार्चमऽइन्द्रश्चमेसरस्वतीचमऽइन्द्रश्चमेपू-
षार्चमऽइन्द्रश्चमेबृहस्पतिश्चमऽइन्द्रश्चमेय-
ज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्—अथार्धेन्द्राणि जुहोति अर्धस्येन्द्रदेवत्यत्वादर्धस्य नानादेवत्यत्वात् (अग्निः) (इन्द्रः) (सोमः) (इन्द्रः) (सविता) (इन्द्रः) (सरस्वती) (इन्द्रः) (पूषा) (इन्द्रः) (बृहस्पतिः) (इन्द्रः) एते प्रसिद्धाः देवताः । तैः समानभाग-त्वादिन्द्र एकैकया सह पठ्यते यास्कोक्ता इन्द्रशब्दस्य नानार्थाः कार्या एवमग्रेऽपि कण्डिकाद्वये ज्ञातव्यम् । एते कल्पन्ताम् । [यजु० १८।१६] ॥ १६ ॥

भाषार्थ–इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्निकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्रदेवकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सोमदेवताकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सविता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझका इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सरस्वती (वाणी) की अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पूषादेवता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बृहस्पति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्रकी अनुकूलता प्रदान करें ॥ १६ ॥

मन्त्रः ।

मित्रश्चमऽइन्द्रश्चमेवरुणश्चमऽइन्द्रश्चमेधा-
तार्चमऽइन्द्रश्चमेत्वष्टाचमऽइन्द्रश्चमेमरुत-
श्चमऽइन्द्रश्चमेविश्वेचमेदेवाऽइन्द्रश्चमेय-
ज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

ॐ मित्र इत्यस्य देवा ऋषयः । विराट् शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १७ ॥

भाष्यम्-(मित्रः) (वरुणः) (धाता) (त्वष्टा) (मरुतः) (विश्वेदेवाः) आसिद्धाः । प्रत्येकामिन्द्रः । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् [यजु० १८।१७] ॥ १७ ॥

भाषार्थ-मित्रदेवता, इन्द्र, वरुण, इन्द्र, धाता, इन्द्र, त्वष्टा, इन्द्र, मरुत, इन्द्र, विश्वेदेवा-देवता और इन्द्रकी अनुकूलता यह सब इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रदान करैं॥१७॥

मन्त्रः ।

पृथिवी च मऽइन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षञ्च मऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च मऽइन्द्रश्च मे समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

ॐ पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिक्शक्वरी छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १८ ॥

भाष्यम्-(पृथिवी) पृथिवी (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षम् (द्यौः) दिवस्वर्लोक्यम् (समाः) वर्षाधिष्ठात्र्यो देवताः (नक्षत्राणि) अश्विन्यादीनि (दिशः) प्रागाद्याः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।१८] ॥ १८ ॥

भाषार्थ-इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पृथिवी प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अन्तरिक्षलोक प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको द्यौ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वर्षाके अधिष्ठातृ देवता प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको नक्षत्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दिक् प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र ऐश्वर्य प्रदान करैं ॥ १८ ॥

मन्त्रः ।

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च मऽऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे

प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥

ॐ अंशुरित्यस्य देवा ऋषयः। निच्यृदत्यष्टिश्छंदः। अग्निर्देवता। वि० पू० ॥ १९ ॥

भाष्यम्—अथ ग्रहान् जुहोति, अश्वादयः सोमग्रहविशेषाः सोमप्रकरणे प्रसिद्धाः। (अंशुः) (रश्मिः) (अदाभ्यः) अदाभ्यस्यैव गृह्यमाणत्वदशायां पृथक्कृत्य ग्रहणे रश्मिशब्देन निर्देशः। रश्मीनां तद्ग्रहणे साधनत्वात् अह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु इति ८।४८ मंत्रलिंगात् (अधिपतिः) अधिपतिशब्देन निग्राह्यो विवक्षितः तस्य ज्येष्ठत्वाद्धाधिपत्यम्। 'ज्येष्ठो वा एष ग्रहाणाम्' इति श्रुतेः। (उपांशुः) (अन्तर्यामः) (ऐन्द्रवायवः) (मैत्रावरुणः) आश्विनः (प्रतिप्रस्थानः) प्रतिप्रस्थानशब्देन निग्राह्यो विवक्षितः (शुक्रः) (मन्थी) एते प्रसिद्धाः ग्रहाः (मे) मम (यज्ञेन) (कल्पन्ताम्) क्लृप्ता भवन्तु। [यजु० १८।१९] ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अंशु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको रश्मि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अदाभ्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको निग्राह्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उपांशु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अन्तर्याम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐन्द्रवायव ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मैत्रावरुण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आश्विन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रतिप्रस्थान प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शुक्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मंथीग्रह प्रदान करें, यह सब यज्ञके ग्रहपात्र हैं इनकी प्राप्ति यज्ञ करनेकी सामर्थ्य है ॥ १९ ॥

मन्त्रः।

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

ॐ आग्रयण इत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदत्यष्टिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २० ॥

भाष्यम्-(आग्रयणः) (वैश्वदेवः) प्रातःसवनगतः आद्यो वैश्वदेवः (ध्रुवः) ध्रुवनामा ग्रहः (वैश्वानरः) (ऐन्द्राग्नः) (महावैश्वदेवः) तृतीयसवनगतः (मरुत्वतीयाः) महामरुत्वतीयाः (निष्केवल्यः) (सावित्रः) (सारस्वतः) अभिषेचनीये सरस्वतीनामपां ग्रहणमेव सारस्वतो ग्रहः सारस्वतं ग्रहं गृह्णातीति तत्राम्नानात् (पात्क्नीवतः) (हारियोजनः) एते मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) । [यजु० १८।२०] ॥ २० ॥

भाषार्थ-इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आग्रयण ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वैश्वदेव प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ध्रुवग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वैश्वानर प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐन्द्राग्न प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वैश्वदेव प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मरुत्वतीय प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको निष्केवल्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सावित्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सारस्वत ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पात्क्नीवत ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको हारियोजन ग्रह प्रदान करें ॥ २० ॥

मन्त्रः ।

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च मऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

ॐ स्रुच इत्यस्य देवा ऋषयः । विराड् धृतिश्छंदः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्-(स्रुचः) जुह्वादयः (चमसाः) चमसानि ग्रहपात्राणि (वायव्यानि) पात्रविशेषाः (द्रोणकलशः) (ग्रावाणः) (अधिषवणे) काष्ठफलके (पूतभृत्) (आधवनीयः) द्वौ सोमपात्रविशेषौ (वेदिः) (बर्हिः) (अवभृथः) (स्वगाकारः)

शम्युवाकः तेन यथास्वं देवतानां हविरंगीकारात् । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।२१] ॥ २१ ॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको स्रुक् प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चमस प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वायव्य प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको द्रोणकलश प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ग्रावा प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अधिषवण प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझका पूतभृत् प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आधवनीय प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वेदि प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बर्हि प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अवभृथ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शम्युवाकनाम पात्र प्रदान करैं ॥ २१ ॥

मन्त्रः ।

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्मश्च॑ मे॒ऽर्कश्च॑ मे॒ सूर्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मेऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॒ मेऽदि॑तिश्च मे॒ दिति॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ऽङ्गुल॑यः॒ शक्व॑रयो दि॒श॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवता ऋषयः । भुरिक्छक्वरी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्—कण्डिकाद्वये यज्ञक्रतुहोमः । अथैतान्यज्ञक्रतूञ्जुहोत्यग्निश्च म इति ९।३।३।१ श्रुतेः । (अग्निः) चीयमानो वह्निरग्निष्टोमो वा (घर्मः) प्रवर्ग्यः (अर्कः) इन्द्रायार्कवते पुरोडाशमिति विहितो यागोऽर्कः (सूर्यः) सौर्यं चरुमिति विहितः सूर्यः (प्राणः) गवामयनम् (अश्वमेधः) प्रसिद्धः (पृथिवी) पृथिवी (दितिः) (अदितिः) आदीना देवमाता (द्यौः) दिवः एते देवविशेषाः (अङ्गुलयः) विराट्पुरुषावयवाः (शक्वरयः) शक्तयः (दिशः) प्राच्याद्याः (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) [यजु० १९।२२] ॥ २२ ॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चीयमान अग्नि वा अग्निष्टोम प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रवर्ग्य प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पुरोडाशसंबंधी यज्ञ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सूर्यसंबंधी चरु प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्राण (गवामयनसत्र) प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अश्वमेध यज्ञ प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पृथिवी प्रदान करैं, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दिति प्रदान करैं, इस

यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आदिति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको द्युलोक प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अंगुलि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शक्तियें प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्राची आदि दिशाओंकी अनुकूलता प्रदान करें ॥ २२ ॥

मन्त्रः ।

व्रतञ्च मऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मे होरात्रेऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

ॐ व्रतमित्यस्य देवा ऋषयः । पङ्क्तिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २३ ॥

भाष्यम्—(व्रतम्) नियमः (ऋतवः) वसन्तादयः (तपः) कृच्छ्रचान्द्रायणादि (संवत्सरः) प्रभवादिः (अहोरात्रे) दिनंनिशे (ऊर्वष्ठीवे) ऊरू चाष्ठीवन्तौ जानुनी च ऊर्वष्ठीवे अवयवविशेषौ (बृहद्रथन्तरे) एतन्नामके सामनी (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८।२३] ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शरीरके नियम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वसन्तआदि ऋतु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तप (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि) प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको संवत्सर प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऊरु और जानु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बृहद्रथन्तर साम प्रदान करें ॥ २३ ॥

मन्त्रः ।

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म

एकविꣳशतिश्च मऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मऽएकत्रिꣳशच्च मऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

ॐ एकाचेत्यस्य देवा ऋषयः । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः शेषस्य विराट्संकृतिः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २४ ॥

भाष्यम्—अयुग्मस्तोमहोमार्था मन्त्राः, अथायुजस्तोमान् जुहोतीति ९ । ३ । ३ । २ श्रुतेः । एकामादाय द्वितीयां विहाय तृतीयामादाय चतुर्थीं विहाय परित्यक्तसमसंख्याकेनात्तविषमसंख्याकेन मन्त्रेणायुग्मान् स्तोमान् जुहुयादित्यर्थः । आदरातिशयद्योतनार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः । अयुग्मस्तोमहोमैः सर्वकामावाप्तिः । तथा च श्रुतिः—"एतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्ता युग्मिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमायंस्तथैवैतद्यजमानः सर्वान्कामानाप्ता युग्मिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमेति" इत्यादि । एका च मेति सुगमम् । [यजु० १८।२४]॥२४॥

भाषार्थ–इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको एक प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तीन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पाँच प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सात प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको नौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ग्यारह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तेरह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पंद्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सत्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उन्नीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इक्कीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तेईस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पच्चीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सत्ताईस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उन्तीस करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको एकतीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तेंतीस प्रदान करें ॥ २४ ॥

विशेष–इस मंत्रमें गणितविद्या भी कथन की है यज धातुका संगतिकरण अर्थ होनेसे किसी संख्याका जोडदेना और दान अर्थसे व्यय करदेना है कारण गुणन भाग वर्ग घन मूल

आदि यह सब इसीके अन्तर्गत होते हैं, संख्याके जोडनेको योग जैसे ५ + ५ = १० और अनेकबार एकसी संख्याके जोडनेको गुणन करते हैं जैसे ४ × ५=२० चारको पाँच स्थानमें जोडनेसे बीस होते हैं, चारको चौगुना किया तो चारके वर्ग सोलह हुए इसी प्रकार अन्तरसे भाग वर्ग मूल घनं आदि निष्पन्न होते हैं, तो संख्या बुद्धिमानोंको यथायोग्य जाननी उचित है। मूलमात्र दिखलाया है, अङ्कगणित बीजगणित आदि सब संख्याएँ इससे उत्पन्न होती हैं ॥ २४ ॥

मन्त्रः ।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

ॐ चतस्रश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । उत्कृतिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २५ ॥

भाष्यम्—एककण्डिकया युग्मस्तोमान् जुहोति । अथ युग्मतो जुहोति चतस्रश्च म इति ९ । ३ । ३ । ४ तत्फलं स्वर्गप्राप्तिः । एतद्वै छन्दाꣳस्यब्रुवन् यातयामा वा अयुजस्तोमा युग्मभिर्वयꣳस्तोमैः स्वर्गं लोकमयामेति तथैतद्यजमानो युग्मभिस्तोमैः स्वर्गं लोकमेति" इति श्रुतेः । पूर्वपूर्वमुत्तरेण सम्बन्धेनातिवृक्षारोहणवत् तथा च श्रुतिः "पूर्वपूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संयुनक्ति यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामुत्तराꣳ शाखाꣳ समालम्भꣳ रोहेत्तादृक्तत्" इति । अत्रोक्ता संख्या संख्येयनिष्ठा । एते यज्ञेन कल्पन्ताम् । [यजु० १८ । २५] ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चारसंख्याका स्तोम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोक मुझको आठ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बारह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सोलह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चौबीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अट्ठाईस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बत्तीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको छत्तीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चालीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चौवालीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अडतालीस प्रदान करें * ॥ २५ ॥

मन्त्रः ।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

ॐ त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । ब्राह्मी बृहती छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २६ ॥

भाष्यम्—कण्डिकाद्वयं वयोहोमे विनियुक्तम् । तथा च श्रुतिः—'अथवयांᳬसि जुहोति त्र्यविश्च म इति पशवो वै वयांᳬसि पशुभिरेवैनमेतदन्नेन प्रीणाति वयो· पशुभिरेवैनमेतदन्नेनाभिषिञ्चति' इति । अग्निपणमासात्मकः कालः (त्र्यविः) त्रयोऽवयवो यस्य त्र्यविः सार्धसंवत्सरो वृषः तादृशी गौः (त्र्यवी) (दित्यवाट्) द्विसंवत्सरो वृषो दित्यवाट् तादृशी गौः (दित्यौही) (पञ्चाविः) पञ्चावयो यस्य सः पञ्चावि । सार्द्धद्विसंवत्सरो वृषः (पञ्चावी) तादृशी गौः (त्रिवत्सः) त्रयो वत्सा यस्य सः त्रिवत्सः त्रिवर्षो वृषः (त्रिवत्सा) तादृशी गौः (तुर्यवाट्) सार्धत्रिवर्षो वृषः (तुर्यौही) तादृशी गौः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । [यजु० १८ । २६] ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको डेढवर्षकी आयुका बछडा प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको डेढवर्षकी आयुकी बछिया प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देव-

* एक दो तीन चारसे इस बातका भाव भी सूचित होता है कि, एकासे नहीं एक अद्वितीया ब्रह्मशक्ति, दोसे दो सुपर्ण, तीनसे वेदत्रयी वा तीन काल, चारसे चार वेद, पांचसे पांच बाण, छःसे छः ऋतु, सातसे सात सागर, आठसे आठ दिशा वा आठ लोकपाल वा आठ वसु लेने, नौसे अंक भी इसी प्रकार आगे जानना ।

तालोग मुझको दो वर्षका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दो वर्षकी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ढाई वर्षका वृष प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ढाई वर्षकी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तीन वर्षका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तीन वर्षकी गाय प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको साढे तीन वर्षका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको साढे तीन वर्षकी गौ प्रदान करें ॥ २६ ॥

मन्त्रः ।

पुष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

ॐ पष्ठवाडित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृद्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २७ ॥

भाष्यम्-(पष्ठवाट्) पष्ठं वर्षचतुष्कं वहतीति पष्ठवाट् चतुर्वर्षो वृषः (पष्ठौही) तादृशी गौः (उक्षा) सेचनक्षमो वृषः (वशा) वन्ध्या गौः (ऋषभः) अतियुवा वृषः (वेहत्) गर्भघातिनी गौः (अनड्वान्) अनः शकटं वहतीत्यनड्वान् शकटवाहनक्षमो वृषः (धेनुः) नवप्रसूता गौः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) स्वस्वव्यापारसमर्था भवन्तु । यद्वा एते यज्ञेन मम कल्पन्ताम् । मह्यमुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः । एवं पूर्वत्र । [यजु० १८ । २७] ॥ २७ ॥

भाषार्थ-इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चार वर्षका वृप प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चार वर्षकी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सेचनसमर्थ वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वन्ध्या गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अतियुवा वृप प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको गर्भघातिनी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शकट (छकडा) वहन करनेमें समर्थ वृप प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको नवप्रसूता गौ प्रदान करें, यह सब यज्ञके संपादनके निमित्त हैं ॥ २७ ॥

मन्त्रः ।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्पतये

स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥ इयन्ते राण्मित्राय यन्तासि यमनऽऊर्ज्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानान्त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

ॐ वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः । पूर्वार्द्धस्यार्ची बृहती छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २८ ॥

भाष्यम्—अथ नामग्राहहोमः । तथा च श्रुतिः–[अथ नामग्राहं जुहोति वाजाय स्वाहेत्येतद्धै देवाः सर्वान्कामानाप्त्वाथैतमेव प्रत्यक्षं प्रीणातीति ९।२।३।८] (वाजाय) वाजोऽन्नं तस्मै (स्वाहा) स्वाहा वाजादीनि चैत्रादिमासानां नामानि तन्नाम गृहीत्वा होतव्यमित्यर्थः । अन्नप्राचुर्याच्चैत्रोऽन्नरूपः । (प्रसवाय) अनुज्ञारूपाय जलक्रीडादौ अभ्यनुज्ञादानात्प्रसवो वैशाखः तस्मै० । (अपिजाय) अप्सु जायतऽइत्यपिजः जलक्रीडारतत्वादपिजो ज्येष्ठः तस्मै० । (क्रतवे) यागरूपाय चातुर्मास्यादियागप्राचुर्यात् क्रतुराषाढः तस्मै० । (वसवे) वासयति वसुः चातुर्मास्ये यात्रानिषेधाद्वसुः श्रावणः । (अहर्पतये) दिनस्वामिने सूर्यरूपाय तापकरत्वाद्भाद्रपदस्याहर्पतित्वं तस्मै० । (मुग्धाय) अह्नि तुषारादिना मोहरूपाय दिवसाय तुषारबाहुल्यान्मुग्धमह आश्विनः । (अमुग्धाय वैनꣳशिनाय) विनश्यतीति विनंशी विनश्येव वैनंशिनः स्वार्थिकोऽण् अल्पघटिकावत्त्वेन विनाशशीलाय कार्तिकाय स्नाननियमादिना पापनाशकत्वादमुग्धाय मोहनिवर्तकाय कार्तिकाय० (अविनंशिने आन्त्यायनाय) न विनश्यतीत्यविनंशी तस्मै विनाशरहिताय अन्ते सर्वेषां नाशे भवमन्त्यं तदयनं चेत्यन्त्यायनं तत्र भवः आन्त्यायनस्तस्मै । सर्वनाशेऽप्यवशिष्टायात एवाविनंशिने विष्णुरूपाय मार्गशीर्षाय " मासानां मार्गशीर्षोऽस्मीति । भगवद्गी० १०।३५ " । (आन्त्याय भौवनाय) भुवनानामयं भौवनः अन्ते स्वरूपे भव आन्त्यस्तस्मै । लोकस्वरूपपुष्टिकरत्वात्तत्र भवत्वं जाठराग्नेर्दीप्तिकरत्वेन पुष्टिकरत्वं पौषस्य । (भुवनस्पतये) भूतजा-

त्तस्य पालकाय माघाय स्नानादिना पुण्यजनकत्वेन पालकत्वं माघस्य (अधिपतये) अधिकपालकाय फाल्गुनाय वर्षान्तत्वात् (प्रजापतये) द्वादशमासाधिष्ठात्रे प्रजापति-नामकाय देवाय (स्वाहा) सुहुतमस्तु । हे अग्ने (इयम्) (ते) तव (राट्) राज्यम् । यत्र यागाः क्रियन्ते तत्तवैव राज्यम् । किञ्च–हे अग्ने त्वं (मित्राय) मित्रस्य सख्युर्यजमानस्य (यन्ता) नियामकः (असि) असि । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी मित्रायेति । तथा त्वम् (यमनः) यमयतीति यमनः अग्निष्टोमादिकर्मसु सर्वान्नियमयन् अतः (ऊर्जे) विशिष्टान्नरसाय (त्वा) त्वामभिषिञ्चामीति शेषः । तथा (वृष्ट्यै) वर्षणाय (त्वा) त्वामनुभिषिञ्चामीति । तथा (प्रजानामाधिपत्याय) प्रजास्वामित्वाप्त्यै त्वामभिषि-ञ्चामि वसोर्धारया "प्रजानामाधिपत्यायेत्यन्नं वा ऊर्ज्जन्नं वृष्टिरन्नेनैवैनमेतत्प्रीणाति" इति ९ । ३ । ३ । १०–११श्रुतेः " । [यजु० १८।२८]। २८ ॥

भाषार्थ–चैत्रमासके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, वैशाखके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, ज्येष्ठके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, आषाढके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, श्रावणके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, भाद्रपदके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, आश्विनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, कार्तिकके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, मार्गशीर्षके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, पौषके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, माघके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, फाल्गुनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, संवत्सरके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, भुवनपतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, अधिपतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, द्वादश महीनोंके अधिष्ठातान् प्रजापतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, हे प्रजापते यह तुम्हारा राज्य है अर्थात् जहां यज्ञ होताहै वह सब तुम्हारा ही राज्य है, अग्निष्टोमादिकर्मोंमें सबके नियन्ता तुम सखारूप इस यजमानके नियामक हो विशिष्ट अन्नरसके निमित्त तुमको वसुधारासे सिंचित करताहूं "अग्निमें आहुतिदानसे अच्छी वर्षा होतीहै" प्रजाके स्वामित्वप्राप्तिके निमित्त वसुधारासे तुमको अभिषेक करताहूं ॥ २८ ॥

मन्त्रः ।

आयुर्य्यज्ञेन कल्पताम्प्राणो यज्ञेन कल्पताञ्चक्षुर्य्यज्ञेन कल्पताᳬं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्वाग्यज्ञेन कल्पताम्मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताञ्ज्योतिर्य्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वर्य्यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठय्यँज्ञेन कल्पतां यज्ञो

ज्ञेनंकल्पताम् ॥ स्तोमश्चयजुश्च ऋक्
चसामंचबृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्द्देवाऽअगं-
न्मामृताऽअभूमप्रजापतेःप्रजाऽअभूमवेट्
स्वाहा ॥ २९ ॥

इतिसंहितायांरुद्रपाठेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

ॐ आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषयः । विराट् विकृतिश्छन्दः । अग्नि-
र्देवता । वि० पू० ॥ २९ ॥

भाष्यम्—कल्पहोमः कल्पतामिति लिङ्गात् [अथ कल्पाञ्जुहोति ९।३।३।१२।] (यज्ञेन) निमित्तेन (आयुः) जीवनकालः (कल्पताम्) साध्यतां साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (प्राणः) प्राणः (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (चक्षुः) चक्षुः (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (श्रोत्रम्) श्रोत्रम् (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (वाक्) वाक् (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (मनः) मनः (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (आत्मा) देहः "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" । इति स्मृतेः । (यज्ञेन) निमित्तेन (ब्रह्मा) वेदः (कल्पताम्) साध्यताम् (ज्योतिः) स्वयंप्रकाशः परमात्मा (यज्ञेन) निमित्तेन (कल्पताम्) साध्यताम् । पुण्यकर्मानुष्ठानं परमात्मज्ञाने कारणम् । (स्वः) स्वर्गः (यज्ञेन कल्पताम्) साध्यताम् (पृष्ठम्) स्वर्गस्थानं स्तोत्रं वा (यज्ञेन कल्पताम्) यज्ञेन साध्यताम् (यज्ञः) (यज्ञेन) (कल्पताम्) यज्ञो यज्ञेनैव क्लृप्तो भवतु "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" इति श्रुतेः । (स्तोमम्) स्तोमस्त्रिवृत्पञ्चदशादि (यजु०) अ-नियतपादो मंत्रः (ऋक्) नियतपादा (साम) गीतिप्रधानम् (बृहद्रथन्तरः) बृह-द्रथन्तरे तद्विशेषौ वसोर्धारयैनमग्निमभिषिच्यात्मानं यजमानः प्रशंसति, वयं यजमानाः (देवाः) देवा भूत्वा (स्वः) स्वर्गम् (अगन्म) गतवन्तः गत्वा च (अमृताः) अमरणधर्मिणः (अभूम) अभूम (प्रजापतेः) हिरण्यगर्भस्य (प्रजाः) प्रजाः (अभूम) अभूमेति फलवचनम् । अनेन वसोर्धारायाः सर्वकामप्राप्तिहेतुत्वमुक्तम् । (वेट् स्वाहा) वसोर्धाराहोमार्थो मंत्रः वेडिति वषट्कारः । "वषट्कारो हैष परोक्षं यद्वेट्कारो वषट्कारेण

वा वै स्वाहाकारेण वा देवेभ्योऽन्नं प्रदीयते" इति ९।३।३।१४ श्रुतेः इति वसोर्धाराहोमन्त्राः समाप्ताः । [यजुः० १८।२९] ॥ २९ ॥

भाषार्थ-इस यज्ञके प्रसादसे आयुकी वृद्धि हो, यज्ञके प्रसादसे प्राण रोगरहित होकर बलिष्ठ हों, इस यज्ञके प्रसादसे नेत्र इन्द्रिय उत्कृष्टताको प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे श्रोत्रइन्द्रियकी श्रेष्ठता सिद्ध हो, इस यज्ञके प्रसादसे वागिन्द्रियकी श्रेष्ठता सिद्ध हो, इस यज्ञके प्रसादसे मनकी स्वस्थता हो, इस यज्ञके प्रसादसे आत्मा प्रसन्न हो, इस यज्ञके प्रसादसे ब्रह्म प्रसन्न हो, इस यज्ञके प्रसादसे ज्योति प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे सुख प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे परमसुख प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे महायज्ञ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे स्तोम यजु ऋक् साम बृहत् और रथन्तर साम यह सबही प्रसन्न हों, इस यज्ञके प्रसादसे हम स्वर्गीय देवत्व प्राप्त करने तथा अमर होनेमें समर्थ हों, इस यज्ञके प्रसादसे हम हिरण्यगर्भ प्रजापतिकी प्रियतम प्रजा होसकें। कथन कियेहुए समस्त देवताओंकी प्राप्तिके निमित्त ही यह वसोर्धारा हवन आहुत हुआ यह समस्त आहुतियां भली प्रकार गृहीत हों॥२९॥

विशेष-यज्ञ और उसका साधन तथा प्राणियोंको जो कुछ आवश्यकता होती है उसका वर्णन इन मंत्रोंमें कियागयाहै यज्ञके फलसे यह ऊपर कही ३४७ वस्तु सम्पन्न होसकतीहैं यह सब कुछ यज्ञके निमित्त ही सम्पादन हो। मनुष्यका सर्वस्व ईश्वरका है और यज्ञसे सब कुछ प्राप्त होसकता है इस कारण यज्ञके निमित्त सब सम्पन्न हों यही प्रार्थना है ॥ २९ ॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्वितोऽष्टमोऽध्यायः ८

अथ नवमोऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

॥ हरिः ॐ ॥ ऋचं वाचम्प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणम्प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रम्प्रपद्ये ॥ वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

ॐ ऋचं वाचमित्यस्य दधीच ऋषिः । जगती छन्दः । लिङ्गोक्ता देवता । शान्तिपाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-(ऋचम्) ऋग्रूपाम् (वाचम्) वाचम् (प्रपद्ये) प्रविशामि शरणं व्रजामि (यजुः) यजूरूपम् (मनः) मनः (प्रपद्ये) प्रविशामि (प्राणम्) प्राणरूपम् (साम) साम (प्रपद्ये) प्रविशामि (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रियम् (श्रोत्रम्) श्रोत्रेन्द्रियं च (प्रपद्ये) प्रविशामि (वाक्) वागिन्द्रियम् (ओजः) मानसं बलं आध्यर्चसम् (ओजः) शारीरं बलम् (प्राणापानौ) उच्छ्वासनिश्वासवायू च एते (सह) एकीभूताः सन्तः (मयि) मयि वर्तन्ते । वागादिग्रहणं सप्तदशावयवोपलक्षं सप्त-

दशावयवं प्रजापतेः लिङ्गं प्रपद्ये इत्यर्थः। त्रयीविद्यां लिंगशरीरं च प्रपन्नं प्रवर्ग्यो न नाशयेदिति भावः। [यजु० ३६। १] ॥ १ ॥

भाषार्थ—ऋचारूप वाणीकी शरण होताहूँ, यजुःरूप मनकी शरण प्राप्त होताहूँ, प्राणरूप सामकी शरण होताहूँ, चक्षुइन्द्रिय, श्रोत्रइन्द्रियकी शरण होताहूँ मनका बल शारीरिक बल उच्छ्वास निश्वास वायु यह स्वस्थ होकर मुझमें स्थित हों ॥ १ ॥

विशेष—वागादिग्रहणसे सप्तदश अवयवका उपलक्षण है, सप्तदश अवयव युक्त प्रजापतिका शरीर है, उसकी शरण होताहै, त्रयीविद्यारूप लिंगशरीर है, परमात्माकी कृपासे सब अवयवबल सम्पन्न हों ॥ १ ॥

मन्त्रः।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ॥ शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

ॐ यन्म इत्यस्य दधीच ऋषिः। पंक्तिश्छन्दः। बृहस्पतिर्देवता। शान्तिपाठे विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्—(मे) मम (चक्षुषः) चक्षुरिन्द्रियस्य (यद्) यत् (छिद्रम्) अवखण्डनं जातं प्रवर्ग्याचरणेन (हृदयस्य) बुद्धेर्वा यत् छिद्रं जातम् (मनसः) मनसः (वा) यत् (अतितृण्णम्) अतिहिंसितम्। प्रवर्ग्याचरणेन यच्चक्षुर्बुद्धिमनसां व्याकुलत्वं जातम् (बृहस्पतिः) बृहतां पतिर्देवगुरुः (मे) मम (तत्) छिद्रमतितृण्णं (दधातु) संदधातु छिद्रं निवर्तयतु (भुवनस्य) भूतजातस्य (यः) (पतिः) अधिपतिः प्रवर्ग्यरूपो यज्ञः सः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपः (भवतु) भवतु। बृहस्पतिना छिद्रापाकरणात्प्रवर्ग्यः कल्याणरूपोऽस्त्वित्यर्थः। [यजु० ३६।२] ॥ २

भाषार्थ—मेरी चक्षु इन्द्रियकी जो न्यूनता है परमात्मा मेरी उस न्यूनता मन बुद्धिकी व्याकुलताको निवृत्त करो, हमारे निमित्त कल्याण हो, जो संपूर्ण भुवनोंका अधिपति है वह हमको सुखरूप हो, अर्थात् त्रिभुवनके अधिपति देवता हमारा कल्याण करैं ॥ २ ॥

मन्त्रः।

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

ॐ तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। निच्यृद्गायत्री छन्दः। सविता देवता। वि० धू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्—यः सविता देवः (नः) अस्माकम् (धियः) बुद्धीः (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्—(तत्) तत्तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य (देवस्य) द्योतमानस्य (सवितुः) सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्यात्मभूतम् (वरेण्यम्) सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयम् (भर्गः) अविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयञ्ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः (धीमहि) तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति वय ध्यायेम। यद्वा—तदिति भर्गोविशेषणं सवितुर्देवस्य तत्तादृशं भर्गो धीमहि किं तदपेक्षायामाह—य इतीति लिंगव्यत्ययः। यद्भर्गो धिया प्रचोदयादिति तद्ध्यायेमेति समन्वयः। यद्वा—यः सविता सूर्यः 'धियः' कर्माणि 'प्रचोदयात्' प्रेरयति तस्य 'सवितुः' सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत्सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः सम्भजनीयं 'भर्गः' पापानां तापकं तेजोमण्डलम् 'धीमहि' ध्येयतया मनसा धारयेम, यद्वा—भर्गःशब्देनान्नमभिधीयते। यः सविता देवो धियः प्रचोदयति तस्य प्रसादाद्भर्गोन्नादिलक्षणं फलं धीमहि धारयामः। तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः। भगवान् शंकराचार्यस्तु—'अथ सर्वदेवात्मनः सर्वशक्तेः सर्वावभासकतेजोमयस्य परमात्मनः सर्वात्मकत्वद्योतनार्थं सर्वात्मकत्वप्रतिपादकगायत्रीमहामन्त्रस्योपासनप्रकारः प्रकाश्यते, तत्र गायत्रीं प्रणवादिसप्तव्याहृत्युपेतां शिरःसमेतां सर्ववेदसारामिति वदन्ति। एवं विशिष्टा गायत्री प्राणायामैरुपास्या सप्रणवव्याहृतित्रयोपेता प्रणवान्ता गायत्री जपादिभिरुपास्या तत्र शुद्धगायत्री प्रत्यक्ब्रह्मैक्यबोधिका 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इति नोऽस्माकं धियो बुद्धीः यः प्रचोदयात् प्रेरयेदिति सर्वबुद्धिः संज्ञान्तःकरणप्रकाशकसर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते। तस्य प्रचोदयाच्छब्दनिर्दिष्टस्यात्मनः स्वरूपभूतं परब्रह्म तत्सवितुरित्यादिपदैर्निर्दिश्यते। तत्र "ॐतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणास्त्रिविधः स्मृतः" इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतःसिद्धं परब्रह्मोच्यते, सवितुरिति सृष्टिस्थितिलयलक्षणकस्य सर्वप्रपञ्चस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते। वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम्। भर्ग इत्यविद्यादिदोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम्। देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम्। सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्ठ्यर्थो राहोः शिरोवदौपचारिकः। बुद्ध्यादिसर्वदृश्यसाक्षिलक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि ध्यायेम। एवं सति सह ब्रह्मणा स्वविवर्तजडप्रपञ्चेन रज्जुसर्पन्यायेनापवादसामानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोयमिति न्यायेन सर्वसाक्षिप्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यरूपमेकत्वं भवतीति। सर्वात्मकब्रह्मबोधकोऽयं गायत्रीमंत्रः सम्पद्यते। सप्तव्याहृतीनामयमर्थः।

भूरिति–सन्मात्रमुच्यते. भुव इति–सम्भावयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते सुव्रियत इति व्युत्पत्त्या स्वरिति–सुष्ठु सर्वैर्ध्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यते, मह इति–महीयते पूज्यत इति व्युत्पत्त्या सर्वातिशयत्वमुच्यते. जन इति–जनयति इति जनः सकलकारणत्वमुच्यते, तप इति–सर्वतेजोरूपत्वम्, सत्यमिति–सर्वबाधारहितत्वम्। एतदुक्तं भवति–यल्लोके स्वरूपं तदोङ्कारवाच्यं ब्रह्मैव आत्मनोऽस्य सच्चिद्रूपस्य भावादिति, अथ भूरादयः सर्वलोका ॐकारवाच्यब्रह्मात्मकाः न तद्व्यतिरिक्तं किञ्चिदस्तीति व्याहृतयोऽपि सर्वात्मकब्रह्मबोधिकाः गायत्रीशिरसोऽप्ययमेवार्थः "आपोज्योतीरसो मृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्" आप इत्याप्नोतीति व्युत्पत्त्या व्यापित्वमुच्यते। ज्योतिरितिप्रकाशरूपत्वम्। रस इति सर्वातिशयत्वम्। अमृतमिति–मरणादिसंसारनिर्मुक्तत्वं सर्वव्यापिसर्वप्रकाशकसर्वोत्कृष्टनित्यमुक्तमात्मरूपं सच्चिदानंदात्मकं यदोङ्कारवाच्यं ब्रह्म तदहमस्मीति गायत्रीमन्त्रार्थः। "गुहाशयब्रह्महुताशनोहं कर्तेदमंशाख्यहविर्हुतं सत्। विलीयते नेदमहं भवानीत्येषप्रकारस्तु विभिद्यतेऽत्र॥ यदस्ति यद्भाति तदात्मरूपं नान्यततो भाति न चान्यदस्ति। स्वभावसंवित्प्रतिभाति केवला ग्राह्यं ग्रहीतेति मृषैव कल्पना"॥ इति शंकरभगवतः कृतौ गायत्रीभाष्यम्। योगियाज्ञवल्क्यस्तु–

तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः।
उदाहृते तु यच्छब्दे तच्छब्दः स्यादुदाहृतः॥ १॥
सविता सर्वभूतानां सर्वभावान्प्रसूयते।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यत॥ २॥
दीव्यते क्रीडते यस्माद् द्योतते रोचते दिव।
तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः॥ ३॥
चिन्तयामो वयं भर्ग धियो यो नः प्रचोदयात्।
धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीः पुनःपुनः॥ ४॥
भ्रस्जपाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसौ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगच्चान्ते हरत्यपि॥ ५॥
कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः।
भ्राजते यत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते॥ ६॥
भेति भासयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः।
गत्या गच्छत्यजस्रं यो भगवान्भर्ग उच्यते॥ ७॥
वरेण्यं वरणीयं च संसारभयभीरुभिः।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः॥ ८॥
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च।
ध्यानेन पुरुषो यस्तु द्रश्यः स सूर्यमण्डले॥ ९॥

भाषार्थ-यह गायत्री मंत्रही सर्वोपरि मंत्र है यही ब्रह्मकी उपासना वा ध्यानका परम मंत्र है इसके सौ अर्थ मिलते हैं संस्कृतमें कई अर्थ हमने लिखे हैं संक्षेपसे भाषार्थ लिखते हैं। उस प्रकाशात्मक प्रेरक अन्तर्यामी, विज्ञानानन्दस्वभाव, हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न अथवा आदित्यके अन्तर स्थित पुरुष वा ब्रह्मके सबसे प्रार्थना किये हुए संपूर्ण पापके वा संसारके आवागमन दूर करनेमें समर्थ, सत्य ज्ञान आनन्द आदि तेजको हम ध्यान करते हैं, जो सविता देव हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मके अनुष्ठानके निमित्त प्रेरणा करता है, जगत्के उत्पन्न करनेवाले उन परमदेवताका जो कि भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक व्यापी भर्ग है, उनका हम ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥

विशेष-योगि याज्ञवल्क्यने जो अर्थ किया है उसका वर्णन करते हैं, उसका तेज हम ध्यान करते हैं, यहां तत् भर्गका विशेषण नहीं है, तथापि तत्के प्रयोगसे ही यत्का प्रयोग होजाता है, यही इस श्लोकका आशय है. कि तत्के साथमें यत् शब्द सदा जानना ॥ १ ॥ संपूर्ण प्राणी और संपूर्ण भावोंका उत्पन्नकर्ता सेवन और पवित्र करनेसे उसे सविता कहते हैं ॥ २ ॥ जिस कारण कि वह प्रकाशित होता क्रीडा करता आकाशमें दीप्तिमान् होता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होताहै, इस कारण उसे देव कहते हैं ॥ ३ ॥ हम उस भर्ग तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिवृत्तियोंको वारंवार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें प्रेरणा करता है ॥ ४ ॥ भ्रस्ज-धातु पकानेमें है जिस कारण यह पकाता शोभित दीप्तिमान् होता हुआ अन्तमें जगत्को हरण करताहै ॥ ५ ॥ कालाग्निरूपमें स्थित होकर अग्निसूर्यमें स्थित अपने रूपसे प्रकाशित होताहै, इस कारण उसको भर्ग कहते हैं ॥ ६ ॥ भकारसे सबलोकोंको भयभीत करताहुआ, रसे प्रजाको प्रसन्न करता है, गसे जो निरन्तर गमनागम करता है इस कारण उसको भर्ग कहते हैं, परमार्थ चिन्तामें सविता और भर्गमें भेद नहीं है ॥ ७ ॥ संसारके भयसे भीतहुए प्राणी जिसकी प्रार्थना करते हैं। जो यह सूर्यके अन्तर्गत भर्ग है इसको मुमुक्षु जन्म मृत्यु और दैहिक दैविक भौतिक दुःख इनके नाश करनेके निमित्त ध्यान करते हैं वह पुरुष सूर्यमंडलमें ध्यान करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

इस प्रकार गायत्रीका माहात्म्य वर्णन करके उसीके महाप्रभावमें सात व्याहृतियोंका विशेषण जानना। किस प्रकारका वह भर्ग है? जो भूरादि सात लोकोंको व्याप्त कर स्थित होरहाहै, अर्थात् भूः (भूमि) भुवः (अन्तरिक्ष) स्वः (स्वर्लोक) महः (महर्लोक) जनः (जनलोक) तपः (तपलोक) सत्यम् (सत्यलोक) इस प्रकार क्रमसे लोकोंको व्याप्त करके वह भर्ग इन सात लोकोंको दीपकके समान प्रकाश करताहै। अथवा सात महाव्याहृति ही भूरादिका भर्गादिसे भेद करके प्रकाश करतीहैं, अर्थात् वह तेज कैसा है जो (आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्) जल, ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूः भुवः स्वः ॐ रूप है, उसका ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रः।

कयानश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा। कयाशचिष्ठयावृता ॥ ४ ॥

ॐ कयान इत्यस्य वामदेव ऋषिः । गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता । शान्तिपाठे विनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्–(सदावृधः) सदावर्धमानः (चित्रः) चायनीयः पूजनीयः (सखा) मित्रभूत इन्द्रः (क्या) (ऊती) ऊत्या अवनेन तर्पणेन प्रीणनेन वा (नः) अस्माकम् (आभुवत्) आभिमुख्येन भवेत् (शचिष्ठया) प्रज्ञावत्तमया प्रज्ञासहित-मनुष्ठीयमानेन (कयावृत्ता) केन वर्तितेन कर्मणा च आभिमुखे भवेत् । शचीति कर्म-नाम । इन्द्रः कया ऊत्या अस्माकं सहाय आभिमुख्येन भवति तथा–अतिशयवत्या यागक्रिययाऽस्माकं सखा भवतीति विशदार्थः [यजु० ३६।४] ॥ ४ ॥

भावार्थ–सदा वृद्धि करनेवाले विचित्र वा पूज्य इन्द्र किस तर्पण वा प्रीतिसे किस वर्त-मान अतिशय क्रियाद्वारा हमारे सहायक अभिमुख होताहै, अर्थात् हम क्या उत्तम कर्म करें, क्या क्रिया करें जिससे परमात्मा हमारे सहायकारी हों और अपनी पालनशक्तिद्वारा हमारे निरन्तर वृद्धिकारी सखा हों ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मंहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः ॥ दृ॒ळ्हा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ५ ॥

ॐ कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। गायत्री छं०। इन्द्रो देवता। वि० पू० ५

भाष्यम्–हे इन्द्र (मदानाम्) मदयन्ति तानि मदानि मदजनकानि हवींषि तेषां मध्ये (मंहिष्ठः) श्रेष्ठः अत्यन्तमदजनकः (अन्धसः) अन्नस्य सोमरूपस्य (कः) कः अंशः (त्वा) त्वाम् (मत्सत्) माद्यति मत्तं करोति 'मदी–हर्षे' येनांशेन मत्तः सन् (दृढाचित्) दृढान्यपि (वसु) वसूनि धनानि कनकादीनि त्वम् (आरुजे) 'रुजो–भंगे' आरुजसि चूर्णयसि दातुं भनक्षि भङ्क्त्वा भङ्क्त्वा ददासीत्यर्थः । [यजु० ३६।५] ॥ ५ ॥

भावार्थ–हे परमेश्वर ! सोमरूप अन्नका कौनसा प्रसन्नताओंका अत्यन्त करनेवाला अंश आपको प्रसन्न करताहै, अर्थात् सब अन्नोंमें कौनसा अन्न आपको अधिक तृप्त करताहै जिस अंशसे प्रसन्न होकर आप दृढतासे रहनेवाले सुवर्णादिधनको भक्तोंके निमित्त चूर्ण कर अर्थात् विभाग कर देतेहो ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् ॥ श॒तम्भ॑वास्यू॒तिभिः॑ ॥ ६ ॥

ॐ अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्-हे इन्द्र त्वम् (सखीनाम्) समानख्यातीनाम् (जरितॄणाम्) स्तोतॄणाम् (अविता) रक्षिता (शतम्) शतेन बह्वाभिः (ऊतिभिः) रक्षाभिः सह (नः) अस्माकम् (सु) सुष्ठु (अभिभवासि) अभिमुखो भव भक्तानां पालनाय नानारूपाणि दधासीत्यर्थः । [यजु० ३६।६] ॥ ६ ॥

भाषार्थ-हे परमेश्वर तुम मित्रोंके और स्तुति करनेवाले हम ऋत्विजोंके पालन करनेवाले हो तथा हमसे भक्तोंकी रक्षाके निमित्त भलीप्रकार अभिमुख होनेद्वारा बहुत रूप होते हो अर्थात् अपने भक्तोंकी रक्षाके निमित्त आप सैकड़ों रूप धारण करते हो वा सैकड़ों उपाय अवलंबन करते हो ॥ ६ ॥

मन्त्रः ।

कयात्वन्नऽऊत्याभिप्रमंन्दसेवृषन् ॥ कयास्तोतृब्भ्यऽआभर ॥ ७ ॥

ॐ कयात्वमित्यस्य दधीच ऋषिः । गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता । शान्तिपाठे वि० ॥ ७ ॥

भाष्यम् (वृषन्) वर्षतीति वृषा हे सेक्तः इन्द्र (कया) (ऊत्या) केन तर्पणेन हविर्दानेन (नः) अस्मान् (अभिप्रमन्दसे) अभिमोदयसि (कया) कया ऊत्या तृप्त्या (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्तृभ्यः यजमानेभ्यः (आभर) आहार आहरसि धनं दातुमिति शेषः । तद्वेन तथा वयं कुर्म इति शेषः । [यजु० ३६।७] ॥ ७ ॥

भावार्थ-हे सबकामनाओंके वर्षानेवाले आप किस तृप्ति वा हविर्दानसे हमको प्रसन्न करतेहो, किस ऊतिद्वारा स्तुति करनेवाले यजमानोंके निमित्त धनदान करनेको लातेहो अर्थात् क्रियावश होकर स्तुति करनेवालोंको पूर्णमनोरथ करते हो ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

इन्द्रोविश्श्वस्यराजति ॥ शन्नोऽअस्तुद्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ ८ ॥

ॐ इन्द्र इत्यस्य दधीच ऋषिः। द्विपदा विराट् छन्दः। इन्द्रो देवता। वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्-(विश्वस्य) सर्वस्य जगतः (इन्द्रः) परमेश्वरः महावीरः आदित्यो वा यः (राजति) देदीप्यते (नः) अस्माकम् (द्विपदे) द्विपदां पुत्रादीनाम् (शम्) सुखरूपः (अस्तु) अस्तु (चतुष्पदे) चतुष्पदां गवादीनाञ्च (शम्) सुखरूपोऽस्तु। [यजु० ३६।८] ॥ ८ ॥

भाषार्थ-सबका स्वामी परमेश्वर प्रकाश करताहै, हमारे पुत्रादिमें कल्याण हो, चौपायोंमें कल्याण हो अर्थात् परमैश्वर्यसंपन्न परमदेवता इस संपूर्ण संसारका राजा है, वह क्या द्विपद क्या चतुष्पदको निर्माण करके ही कल्याणविधानमें तत्पर रहताहै ॥ ८ ॥

मन्त्रः।

शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शन्नो॑ भवत्वर्य॒मा। शन्न॒ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ ९ ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः। अनुष्टुप् छंदः। सूर्यो देवता। शान्तिपाठे विनियोगः ॥ ९ ॥

भाष्यम्-(मित्रः) मित्रो देवः प्रद्यात भक्तेषु स्निह्यतीति मित्रः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपो भवतु (वरुणः) वरुणो देवो वृणोत्यङ्गीकरोति भक्तमिति वरुणो देवः (शम्) सुखरूपो भवतु (अर्यमा) इयर्ति गच्छति भक्तं प्रतार्यमा (शम्) अस्माकं सुखरूपो भवतु (इन्द्रः) देवेशः (नः) अस्माकं सुखरूपो भवतु (बृहस्पतिः) बृहतास्पतिर्देवगुरुः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपो भवतु (उरुक्रमः) उरुर्विस्तीर्णः क्रमः पादन्यासो यस्य सः (विष्णुः) परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपो भवतु। [यजु० ३६।९] ॥ ९ ॥

भाषार्थ-मित्रदेवता हमारे निमित्त सुखरूप हों, भक्तके अंगीकार करनेवाले वरुण सुखरूप हों, भक्तके प्रति गमनशील अर्यमा हमारे निमित्त सुख करें, देवेश हमको कल्याण करें देवगुरु और विस्तीर्णपादन्यासवाले व्यापक विष्णु भगवान् हमारे कल्याणकारी हों ॥ ९ ॥

मन्त्रः।

शन्नो॒ वातः॑ पवता॒ᳬ शन्न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑। शन्नः॒ कनि॑क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ऽअ॒भिव॑र्षतु ॥ १० ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । वातादयो देवताः वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्-(वातः) वायुः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखकारी अपरुषः अव्याधिजनकश्च (पवताम्) वहताम् (सूर्यः) जनान् स्वस्वव्यापारेषु प्रेरयति सूर्यः (शम्) सुखरूपः अदहनो ऽपजरूपश्च (नः) अस्माकम् (तपतु) किरणान् विस्तारयतु (पर्जन्यः) पिपर्ति पूरयति जनामिति पर्जन्यः पर्जन्येशः (देवः) देवः (कनिक्रदत्) अत्यन्तं क्रन्दतीति शब्दं कुर्वन् (नः) अस्माकम् (शम्) सुखकरम् (अभिवर्षतु) काशनिक्षाररहितं यथातथा अभिसिञ्चतु [यजु० ३६।१०] ॥ १० ॥

भाषार्थ-उसकी कृपासे वायु हमको सुखरूप वहन करो, सूर्य हमको कल्याणके निमित्त ताप प्रदान करो, मनुष्योंको जलसे तृप्त करनेवाला शब्दायमान देव हमको सुखरूप होकर वर्षा करो ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

अहा॑नि॒ शम्भ॑वन्तु नः॒ शꣳरात्री॒: प्रति॑धीयताम् ॥ शन्न॑ऽइन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒: शन्न॒ऽइन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ॥ शन्न॑ऽइन्द्रापू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शंयोः ॥ ११ ॥

ॐ अहानीत्यस्य दधीच ऋषिः । द्विपदा गायत्री छं० । अहोरात्र्यादयो देवताः । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्-(अहानि) दिनानि (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपाणि (भवन्तु) भवन्तु (रात्रीः) रात्रीः (शम्) सुखरूपाः अस्मासु (प्रतिधीयताम्) प्रतिदधातु महावीर इति शेषः । (इन्द्राग्नी) इन्द्राग्नी (अवोभिः) पालनैः कृत्वा (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपौ भवताम् (रातहव्या) रातं दत्तं हव्यं ययोस्तौ रातहव्यौ हवितृप्तौ (इन्द्रावरुणा) इन्द्रावरुणौ (नः) अस्माकम् (शम्) शम्भवताम् (वाजसातौ) वाजस्य अन्नस्य सातौ निमित्तभूते (इन्द्रापूषणा) इन्द्रपूषसंज्ञौ देवौ (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपौ भवताम् । तथा (सुविताय) साधुगमनाय

साधुप्रसवाय वा तया (शम्) रोगाणां शमनाय (योः) यवनाय पृथक्करणाय च भयानां रोगं भयं च निवर्त्य (इन्द्रासोमा) इन्द्रसोमौ देवौ (शम्) सुखरूपौ भवताम् [यजु० ३६ । ११] ॥ ११ ॥

भाषार्थ–उसी परमात्माकी कृपासे संपूर्ण दिन हमारे निमित्त कल्याणरूप हों, संपूर्ण रात्री कल्याणविधान करें, इन्द्र और अग्नि अपनी पालनाओंसे हमको सुखरूप हों, वृष्टिप्रद इन्द्र और वरुण हमको कल्याण विधान करें अन्नको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र और पूषा देवता हमको सुखकारी हों, इन्द्र और सोमदेवता श्रेष्ठ गमन वा श्रेष्ठ उत्पत्तिके निमित्त तथा रोगोंको शान्त करनेके निमित्त रोग भयके पृथक् करनेके निमित्त सुखकारी हों अथवा सुखकारी इन्द्र सोम देवता हमको कल्याणकारी हों ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ ॥
शंय्योर॒भिस्र॑वन्तु नः ॥ १२ ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः । गायत्री छं० । आपो देवताः । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्–(देवीः) देव्यः दीप्यमानाः (आपः) जलानि (नः) अस्माकम् (अभिष्टये) अभिषेकायाभीष्टाय वा (पीतये) पानाय (च) (शम्) सुखरूपाः (भवन्तु) भवन्तु, अस्माकं स्नाने पाने चापः सुखयित्र्यो भवन्तु । आपः (शंयोः) रोगाणां शमनं भयानां यवनं पृथक्करणं च (अभिस्रवन्तु) (नः) अस्माकं भयरोगनाशं कुर्वन्त्वित्यर्थः [यजु० ३६ । १२] ॥ १२ ॥

भावार्थ–दीप्यमान जल हमारे अभिषेक अभीष्ट और पानके निमित्त सुखरूप हों, हमारे स्नान पानमें जल सुखरूप हों, रोगोंके शमन और भयके पृथक् करनेमें स्रवण करें अर्थात् परमात्माके प्रसादसे जल हमको सुखकारी हों, अर्थात् उत्तम जलपान करनेको मिलें जिससे नीरोग रहें ॥ १२ ॥

मन्त्रः ।

स्यो॒ना पृ॑थिवि नो भवानृक्ष॒रा नि॒वेश॑नी ॥
यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ स॒प्रथाः॑ ॥ १३ ॥

ॐ स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । त्रिष्टुप् छं० । पृथिवी देवता । वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम्-(अनृक्षरा) अक्षरः कण्टकः कन्तपो वा कण्ठतेर्वा कृन्ततेर्वा स्याद्गतिकर्मण इति [निरुक्त० ९ । ३२] तद्ग्रहणं चौरदायादिदुःखनिवृत्त्यर्थम् । न सन्ति ऋक्षराः कण्टकाः दुःखदायिनो यस्यां सा अनृक्षरा (निवेशिनी) निविशन्ति जना यस्यां सा तथा । (सप्रथाः) प्रथमं प्रथः विस्तारः प्रथसा सह वर्तमाना सप्रथाः सर्वतः पृथुः (पृथिवि) हे पृथिवि त्वम् (नः अस्माकम् (स्योना) सुखरूपा (भव) भव । किञ्च (नः) अस्मभ्यम् (शर्म) शरणम् (यच्छ) देहि [यजु० ३६ । १३] ॥ १३ ॥

भावार्थ-हे भूमि ! कंटकहीन अर्थात् दुःखदायियोंसे हीन सुखसे बैठनेयोग्य सब ओरसे पृथु हमको सुखरूप हो, हमको कल्याण दो अर्थात् पृथिवीमें स्थित सुकोमल विस्तृत यह शय्या हमको सुखकारी हो, जल हमारे पापोंको दूर करें, वा अप्रूप परमेश्वर हमारे पापोंको भस्म करें, अथवा यह जल हमारे शरीरका मल दूर करके हमको शुचि करें ॥ १३ ॥

मन्त्रः ।

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातन ॥
महेरणायचक्षसे ॥ १४ ॥

ॐ आपोहिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । गायत्री छन्दः । आपो देवता वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्-(आपः) हे आपो याः यूयमेव (मयोभुवः) सुखस्य भावयित्र्यः (स्थ) भवथ, स्नानपानादिहेतुत्वेन सुखोत्पादकत्वमपां प्रसिद्धं तास्तादृश्यो यूयम् (नः) अस्माकम् (ऊर्जे) रसाय (दधातन) स्थापयत यथा वयं सर्वस्य भोग्यस्य रसस्य भोक्तारो भवेम तथाऽस्मान्कुरुतेति भावः । किञ्च (महे) महते (रणाय) रमणीयाय (चक्षसे) दर्शनाय चास्मान् दधातनेत्यनुवर्तते । महद्रमणीयं दर्शनं ब्रह्मसाक्षात्कारलक्षणं तदस्माकं कुरुत । ऐहिकपारलौकिकसुखं दत्त इतिभावः । [यजु० ३६।१४] ॥१४॥

भावार्थ-हे जलसमूह तुम सुखके करनेवाले सुखकी भावना करनेवाले स्नानपान आदिसे सुखके उत्पादक हो । हमारे बडे रमणीय दर्शनके निमित्त अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार लक्षणयुक्त और निश्चय ही रसानुभव वा ब्रह्मानन्दके अनुभवके निमित्त हमको स्थापन करो ॥ १४ ॥

मन्त्रः ।

योवः शिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः ॥
उशतीरिवमातरः ॥ १५ ॥

ॐ योव इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । गायत्री छं० । आपो देवता । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्-हे आपः (वः) युष्माकम् (यः) (शिवतमः) शान्ततमः सुखैकहेतुः (रसः) रसोऽस्ति (इह) अस्मिन्कर्मणि इह लोके वा स्थितान् (नः) अस्मान् (तस्य) तस्य रसस्य (भाजयत) भागिनः कुरुत । तत्र दृष्टान्तः (उशतीः) उशत्या काम-यमानाः प्रीतियुक्ताः (मातरः) मातरः (इव) यथा स्वकीयस्तन्यरसं बालं पाययन्ति तद्वत् । [यजु० ३६ । १५] ॥ १५ ॥

भाषार्थ-हे जलो ! तुम्हारा शान्तरूप सुखका एकही कारण रस इस कर्म वा इस लोकमें है हमको उस रसका भागी करो, प्रीतियुक्त माता जैसे अपने स्तनोंको बालकोंको पिलाती है ॥ १५ ॥

गूढार्थ-हे परमात्मन् ! आपका जो शान्तरूप ब्रह्मानन्द है कृपा कर हमको उस अमृतका भागी करो ॥ १५ ॥

मन्त्रः ।

तस्मा॒ऽअरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ १६ ॥

ॐ तस्मा इत्यस्य सिंधुद्वीप ऋषिः । गायत्री छन्दः । आपो देवताः । वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्-(आपः) हे आपः यूयम् (यस्य) पापस्य (क्षयाय) विनाशाय अस्मान् (जिन्वथ) प्रीणयथ (तस्मै) तादृशाय पापक्षयाय (अरम्) क्षिप्रम् (वः) अस्मान् (गमाम) गच्छाम वयं शिरसि प्रक्षिपामेत्यर्थः । यद्वा-(यस्य) अन्नस्य (क्षयाय) निवासार्थम् यूयमोषधीः (जिन्वथ) तर्पयथ तस्मै तदन्नमुद्दिश्य वयम् (अरम्) पर्याप्तं यथा भवति तथा (वः) अस्मान् (गमाम) गच्छाम । किञ्च हे आपः (नः) अस्मान् (जनयथ च) पुत्रपौत्रादिजनने प्रयोजतेत्यर्थः । यद्वा-हे आपः वः युष्मत्सम्बन्धिनस्तस्य पर्याप्तिं वयं गमाम गच्छेम यस्य क्षयाय चतुर्थी षष्ठ्यर्थे । क्षयस्य निवासस्य जगतामाधारभूतस्य यस्याहुतिपरिणामभूतस्य रसस्यैकदेशेन यूयं ब्रह्मादिस्तम्ब-पर्यन्तं जगत् जिन्वथ तर्पयथ पश्चाहुतिपरिणामक्रमेणेति भावः । हे आपः नोऽस्मान् तत्र भोक्तृत्वेन जनयथ उत्पादयथ ॥ १६ ॥

भाषार्थ-हे जलो ! तुम्हारे संबंधी उस रसके निमित्त हम शीघ्र प्राप्तिको चलें, जिसके निवास जगत्के आधारभूत अर्थात् आहुतिपरिणामभूत जिस रसके एकदेशसे तुम ब्रह्मासे

स्तम्बपर्यन्त जगत्को तृप्त करते अर्थात् पंचाहुतिके परिणामक्रमसे तृप्त कर प्रसन्न करतेहो और उसके भोगसे हमको उत्पन्न करतेहो, अथवा जिसके निवाससे तुम प्रसन्न होतेहो उस गुण वा रसकी प्राप्तिके निमित्त विशेषकर हम तुम्हारे निकट प्राप्त हैं, हे जलो ! तुम हमको प्रजा उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य दो परमात्माकी प्रार्थना भी इसी मंत्रमें है, जिसके प्रसादसे मुक्तिका सुख प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

मन्त्रः ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

ॐ द्यौरित्यस्य दधीच ऋषिः । शक्वरी छन्दः । विश्वेदेवा देवता । शान्तिपाठे विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्-(द्यौः) द्युलोकरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षरूपा च या (शान्तिः) शान्तिः (पृथिवी) भूलोकरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (आपः) जलरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (ओषधयः) ओषधिरूपा या (शान्तिः) (वनस्पतयः) वनस्पतिरूपा या शान्तिः (विश्वेदेवाः) सर्वदेवरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (ब्रह्म) त्रयीलक्षणपरं वा तद्रूपा या (शान्तिः) शान्तिः (सर्वम्) सर्वजगद्रूपा या (शान्तिः) (शान्तिरेव शान्तिः) या स्वरूपतः शान्तिः (या) शान्तिः (मा) मां प्रति (एधि) अस्तु । महावीरप्रसादात् सर्वं शान्तिरूपं मां प्रत्यास्त्वित्यर्थः । यद्वा-द्यौरित्यादिषु विभक्तिव्यत्ययः । पृथिव्यामप्स्वोषधिषु सर्वेस्मिंश्च या शान्तिः सा मां प्रत्यस्त्वित्यर्थः । [यजु० ३६ । १७] ॥ १७ ॥

भावार्थ-द्युलोकरूप शांति, और अन्तरिक्षरूप शान्ति, पृथिवीरूप शान्ति, जलरूप शांति, औषधिरूप शांति, वनस्पतिरूप शांति, विश्वेदेवासबंधि शांति, वा सर्वदेवरूप शान्ति, त्रयीयुक्त शांति, सर्वजगत्रूप शांति, स्वरूपसेही शांति, जो शांति है वह शांति मेरे प्रति हो अर्थात् यह सब मुझको शान्तरूप हो ॥ १७ ॥

मन्त्रः ।

**दृते दृᳬह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूता-
नि समीक्षन्ताम् ॥ मित्रस्याहञ्चक्षुषा सर्वा-
णि भूतानि समीक्षे ॥ मित्रस्य चक्षुषा समी-
क्षामहे ॥ १८ ॥**

ॐ दृत इत्यस्य दधीच ऋषिः । भुरिगार्षीजगतीछन्दः । महावीरो देवता । वि० पूर्ववत् ॥ १८ ॥

भाष्यम्–(दृते) दृ–विदारे विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे हे महावीर (मा)-माम् (दृᳬह) दृढीकुरु । यद्वा–दृते विदीर्णे कर्मणि मां दृढ अच्छिद्रं कर्म कुरु । यद्वा–सुषिरत्वात् सेक्तृत्वाच्च दृति–शब्देन महावीरः हे दृते महावीर मां त्वं दृढीकुरु कथं दार्ढ्यम्, तदाह–(सर्वाणि भूतानि) प्राणिनः (मा) माम् (मित्रस्य) मित्रस्य (चक्षुषा) नेत्रेण (समीक्षन्ताम्) सम्यक् पश्यन्तु मित्रदृष्ट्या सर्वे मां पश्यन्तु नारिदृष्ट्या सर्वेषां प्रियो भूयासमित्यर्थः (अहम्) अहमपि (सर्वाणि भूतानि) प्राणिजातानि (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रदृष्ट्या (समीक्षे) पश्यामि सर्वे मे प्रियाः सन्तु (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रदृष्ट्या (समीक्षामहे) वयं पश्यामः । परस्पराद्रोहेण सर्वानहिंसन्तो मित्रदृष्ट्या पश्याम इति सरलार्थः । [यजु० ३६।१८] ॥ १८ ॥

भाषार्थ–हे सेचनसमर्थ देव ! मुझको दृढ कीजिये संपूर्ण प्राणी मुझको मित्रके नेत्रोंसे अवलोकन करैं, मैं सब प्राणियोंको मित्रकी चक्षुसे देखताहूं, अर्थात् सब मुझे प्यारे हों, अर्थात् मित्रचक्षु शान्त होतीहै, न मित्र किसीको मारता न मित्रको कोई मारताहै, इस प्रकार परस्पर किसीको अहित न विचारते हम मित्रकी चक्षुसे सबको अवलोकन करैं ॥ १८ ॥

मन्त्रः ।

**दृते दृᳬह मा ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्यो
क्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥**

ॐ दृत इत्यस्य दधीच ऋषिः । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । महावीरो देवता । शान्तिपाठे वि० ॥ १९ ॥

भाष्यम्—(दृते) हे वीर (मा) मां (दृꣳह) दृढीकुरु, आदरार्थं पुनर्वचनम् । हे महावीर (ते) तव (सन्दृशि) सन्दर्शने अहम् (ज्योक्) चिरम् (जीव्यासम्) जीवेयम् । पुनरुक्तिरादरार्था हे देवेश ते सन्दृशि ज्योक् जीव्यासम् । चिरञ्जीवेयमित्यर्थः । [यजु० ३६।१९] ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे महावीर परमदेव ! मुझको दृढ करो, तुम्हारी दृष्टिमें वा आपके दर्शनमें चिरकालतक मैं जीवित रहूँ, आपके दर्शन करता दीर्घकालतक मैं जीवित रहूं ॥ १९ ॥

मन्त्रः ।

नमस्तेहरसेशोचिषेनमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ॥ अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तुहेतयःपावकोऽअस्मभ्यꣳशिवोभव ॥ २० ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । भुरिगार्षी बृहतीछं० अग्निर्देवता । चित्यारोहणे वि० ॥ २० ॥

भाष्यम्—(हिरण्यशकलसहितं स्रुक्स्थमाज्यं दधिमधुघृतकुशमुष्टियुता पात्री एतद्द्वयमादायाध्वर्युश्चित्याग्निमारोहति ब्रह्मयजमानौ त्वग्नेर्दक्षिणत उपविशत इति हे अग्ने (ते) तव (हरसे) हरति सर्वरसानिति हरस्तस्मै (शोचिषे) शोचनहेतवे तेजसे (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (अर्चिषे) पदार्थप्रकाशकाय तेजसे (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (हेतयः) ज्वालाः (अस्मत्) अस्मत्सकाशात् (अन्याः) अन्यान्यस्मद्विरोधिनः विरुद्धाः (तपन्तु) दहन्तु एवं त्वम् (पावकः) शोधकः सन् (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याणः (भव) एतदर्थं च नमस्कृतोऽग्निरस्माकं विरुद्धान् दहत्वस्माकं कल्याणाय भवत्वित्यर्थः । [यजु० ३६।२०] ॥ २० ॥

भावार्थ—हे अग्ने ! तुम्हारे सब रसोंके आकर्षण करनेवाले तेजस्वरूप ज्वालाके निमित्त नमस्कार है, तुम्हारे पदार्थप्रकाशक तेजके निमित्त नमस्कार हो, आपकी ज्वाला हमसे दूसरोंको तपाओ हमको शोधक कल्याणकारक हो ॥ २० ॥

मन्त्रः ।

नमस्तेऽअस्तुविद्युतेनमस्तेस्तनयित्नवे ॥ नमस्तेभगवन्नस्तुयतःस्वःसमीहसे ॥ २१ ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य दधीच ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः विद्युत्स्तनयित्नुरूपे देवते। वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्—(भगवन्) हे भगवन् ! हे महावीर (विद्युते) विद्युद्रूपाय (स्तनयित्नवे) स्तनयित्नुः गर्जितं तद्रूपाय (ते) (नमः) नमः (अस्तु) अस्तु (यतः) यतः कारणात् (स्वः) स्वर्गं त्वं (समीहसे) चेष्टसेऽतः (ते) तुभ्यम् (नमोऽस्तु) नतिरस्तु। [यजु० ३६।२१] ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे भगवन्! आपके विद्युत्रूपके निमित्त नमस्कार हो, गर्जनारूप आपके निमित्त नमस्कार है, जिस कारण स्वर्गसुख देनेको चेष्टा करते हो, इस कारण आपके निमित्त वारंवार नमस्कार हो, अर्थात् आपके अनेक रूप हैं, आप सब प्रकार हमारे सुखके निमित्त यत्न करतेहो आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥

मन्त्रः।

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ऽअभ॑यङ्कुरु ॥
शन्नः॑ कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यन्नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

ॐ यत इत्यस्य दधीच ऋषिः भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दः। परमात्मा देवता। वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्—हे महावीर (यतः यतः) यस्माद्यस्माद्रूपात् समीहसे। यद्वा—यस्माद्यस्माद्दुश्चरितात्त्वम् (समीहसे) अस्मत्सुखकर्तुं चेष्टसे (ततः) ततस्ततः (नः) अस्माकम् (अभयम्) निर्भयम् (कुरु) कुरु किंच (नः) अस्माकं (प्रजाभ्यः) प्रजाभ्यः (शम्) सुखम् (कुरु) कुरु (नः) अस्माकम् (पशुभ्यः) पशुभ्यः (अभयम्) भीत्यभावं कुरु। [यजु० ३६।२२] ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे भगवन्! आप जिस जिस रूपसे चेष्टा करतेहो अथवा जिस जिस दुश्चरित्रसे हमको बचानेकी इच्छा करतेहो, अथवा जिस समय हमको सब प्रकार सुख करनेके निमित्त इच्छा करतेहो उस उस रूपसे वा दुश्चरित्रसे वा चेष्टासे हमको भयरहित करो हमारी प्रजाओंके निमित्त सुख करो, हमारे पशुओंके निमित्त सुख कीजिये, अर्थात् हमारी प्रजा और पशु भयरहित होकर आपके दिये हुए सुखभोगमें समर्थ हों ॥ २२ ॥

मन्त्रः।

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽआप॒ऽओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्र

त्रि॒यास्त॒स्मै॑ सन्तु॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

ॐ सुमित्रियान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । निच्यृत्प्राजापत्या गायत्री छन्दः । आपो देवताः । जलाभिमंत्रणे वि० ॥ २३ ॥

भाष्यम्-(आपः) जलानि (ओषधयः) ओषधयः (नः) अस्माकम् (सुमित्रियाः) साधुमित्रत्वेनावस्थिताः (सन्तु) भवन्तु (यः) शत्रुः (अस्मान्) (द्वेष्टि) वैरं करोति (वयं च) वयमपि (यम्) शत्रुम् (द्विष्मः) द्वेष कुर्मः (तस्मै) उभयात्मकाय शत्रवे आप ओषधयश्च (दुर्मित्रियाः) अमित्रत्वेनावस्थिताः सन्तु । [यजु० ३६।२३] ॥ २३ ॥

भाषार्थ-हे परमेश्वर ! जल वा ओषधि हमारे निमित्त सुखदायक हों, और जो हमसे द्वेष करता है वा हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके लिये दुःखदायक हों आशय यह कि हम तो किसीसे द्रोह करना नहीं चाहते पर जो हमसे द्वेष करते हैं तब हमारे मनमें द्वेष होताहै आपकी कृपासे द्वेषी शत्रुको ओषधि जल दुःखरूप हों ॥ २३ ॥

मन्त्रः ।

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् ॥ पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्रब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ २४ ॥

इति संहितायां रुद्रपाठे शान्त्यध्यायः ॥

ॐ तच्चक्षुरित्यस्य दधीच ऋषिः ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ २४ ॥

भाष्यम्-एतैर्मन्त्रैर्यो महावीरोऽस्माभिः स्तुतः (तत्) तत् (देवहितम्) देवैर्हितं स्थापितम् । यद्वा-देवानां हितं प्रियम् (शुक्रम्) शुक्रं पापासंसृष्टं शोचिष्मद्वा तत् (चक्षुः) जगतां नेत्रभूतमादित्यरूपम् (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तस्य प्रसादात् (शतम्) (शरदः) वर्षाणि (पश्येम अव्याहत-

चक्षुरिन्द्रिया भवेम (शतं शरदः) (जीवेम) अपराधीनजीवना भवेम (शतं शरदः) शतं समाः (शृणुयाम) स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम (शतं शरदः) (प्रब्रवाम) अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम (शतं शरदः) (अदीनाः) (स्याम्) न कस्याप्यग्रे दैन्यं कुर्याम (शतात् शरदः) शतवर्षोपर्यपि (भूयः च) बहुकालं पश्येमेत्यादि योज्यम् । [यजुः ३६ । २४] ॥ २४ ॥

भाषार्थ-वह देवताओंद्वारा स्थापित अथवा देवताओंके हितकारी जगत्के नेत्रभूत शुक्र-मलसे रहित शुद्ध वा प्रकाशरूप पूर्व दिशामें उदय होताहै, परमात्माके प्रसादसे सौ शरद् पर्यन्त देखें, अर्थात् शतवर्षपर्यन्त हमारे नेत्रेन्द्रियकी गति निर्बल न हो, सौ शरद् ऋतु-ओंतक अपराधीन होकर जियें, सौ शरद् पर्यन्त स्पष्ट श्रोत्रइन्द्रियवाले हों, सौ शरद् पर्यन्त अस्खलितवाणी युक्त हों, सौ शरद् पर्यन्त दीनतारहित हों, सौ शरदोंसे अधिक कालपर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें ॥ २४ ॥

विशेष-इसका सूर्योपस्थानमें भी पाठ होता है, यह सब. परमात्माकी प्रार्थना उपासनाके मंत्र हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितःशान्त्यध्यायः ॥

अथ रुद्रे स्वस्तिप्रार्थनामन्त्राऽध्यायः ।

मन्त्रः ।

हरिः ॐ ॥ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥

ॐ स्वस्तीत्यस्य गोतम ऋषिः । विराट् स्थाना त्रिष्टुप् छन्दः । विश्वेदेवा देवताः । पाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्-(वृद्धश्रवाः) वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणं स्तोत्रं हविर्लक्षणमन्नं वा यस्य तादृशः (इन्द्रः) इन्द्रः (नः) अस्माकं स्वस्तीत्यविनाशनाम (स्वस्ति) अविनाशं (दधातु) विदधातु (विश्ववेदाः) विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः । यद्वा-विश्वानि सर्वे वेदवेदांसि ज्ञानानि धनानि वा यस्य तादृशः (पूषा) पोषको देवः (नः) अस्माकम् (स्वस्ति) स्वस्ति विदधातु (अरिष्टनेमिः) नेमिरित्यायुधनाम [निघं० २ । २०] अरिष्टोऽहिंसितो नेमिर्यस्य वा यत्सम्बन्धिनो रथनेमिर्न हिंस्यते सोऽरिष्टनेमिरेवम्भूतः तार्क्ष्यः तृक्षस्य पुत्रः गरुत्मान् (नः) अस्माकम् (स्वस्ति) अविनाशं विदधातु

तथा (बृहस्पतिः) देवानां पतिः पालयिता (नः) अस्माकम् (स्वस्ति) अविनाशं विदधातु । [यजु० २५।१९] ॥ १ ॥

भाषार्थ–वृद्धश्रवा (बडी कीर्तिवाले) इन्द्र हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें, सर्वज्ञपूषा हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करैं, अरिष्टनेमि तार्क्ष्य (तार्क्ष्य–रथ अर्थात् जो रथकी नेमिकी अर्थात् चक्रधारीकी गति कोई भी रोकनेमें समर्थ नहीं है, तिसको ही अरिष्टनेमि तार्क्ष्य कहते हैं, यहांपर रथरूपसे वर्णन हुआ) हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें, बृहस्पति हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करैं ॥ १ ॥

मन्त्रः ।

ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्य-
न्तरिक्षे पयो धाः पयस्वतीः॥ प्रदिशः सन्तु म-
ह्यम् ॥ २ ॥

ॐ पय इत्यस्य लुशोधानाक ऋषिः । विराट् छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्–हे अग्ने हे देव त्वम् (पृथिव्याम्) भूम्याम् (पयः) रसम् (धाः) धेहि स्थापय (च) (ओषधीषु) वनस्पतिषु (पयः) रसम् (धाः) स्थापय (दिवि) स्वर्गे च (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षे च (पयः) रसम् (धाः) स्थापय किञ्च (मह्यम्) मदर्थं (प्रदिशः) दिशो विदिशश्च (पयस्वतीः) पयस्वत्यो रसयुताः सन्तु । आहुतिपरिणामेन पृथिव्यादयो ममाभीष्टदा भवन्त्वित्यर्थः ।[यजु० १८।३६] ॥ २ ॥

भाषार्थ–पृथिवी देवी हमारे निमित्त (अर्थात् हमको देनेके लिये) रस धारण करै, औषधियें भी हमारे निमित्त रस धारण करैं, स्वर्गलोक और अन्तरिक्षलोकभी हमारे निमित्त रस धारण करैं अर्थात् आहुतिके परिणामसे पृथिवी आदि हमको भगवत्कृपासे अभीष्ट देनेवाले हों ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो वि-
ष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि ॥ वैष्णव-
मसि विष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

ॐ विष्णोरराटमसीत्यस्योत्तथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। याजुषी उष्णिक् छंदः। विष्णुर्देवता। हविर्धानोपरिमण्डपकरणे वि० ॥ ३ ॥

भाष्यम्—हविर्धानाख्ये द्वे शकटे दक्षिणोत्तरभागयोः स्थापयित्वा तदावरकत्वेन परितो हविर्धानाख्यं मण्डपं कुर्यात्। स च मण्डपो विष्णुदेवताकत्वाद्विष्णुरित्युपचर्यते विष्णोश्च मूर्तिधरस्य शरीरस्यावयवरूपाविह ललाटाख्योऽवयवोऽस्ति, तद्धविर्धानमण्डपस्यापि पूर्वद्वारवर्तिस्तम्भयोर्मध्ये काचिद्दर्भमाला ग्रथ्यते, तां मालां तद्बन्धनाधारतिर्यग्वंशं वा सम्बोध्यं पुरुषं सम्बोध्य ललाटत्वेनोपचर्यते, हे दर्भमयमालाधारवंश। त्वं (विष्णोः) विष्णुमूर्तित्वेनोपचरितस्य हविर्धानमण्डपस्य (रराटम्) ललाटस्थानीयः (असि) असि हे रराटप्रान्तौ युवाम् (विष्णोः) विष्णुनामकस्य हविर्धानमण्डपस्य (श्नप्त्रे· स्थः) ओष्ठसन्धिरूपे भवथ [द्वार्य्यौ परिषीव्यति लस्यूजनि प्रतिहृतया रज्ज्वा विष्णोः स्यूरसीति कात्यायनः] हे लस्यूजनि त्वम् (विष्णोः) हविर्धानस्य (स्यूः असि) सीव्यन्तेऽनेनेति स्यूः सूचिरसि [विष्णोः ध्रुवोसीति ग्रन्थीकरोति] हे रज्जुग्रन्थे त्वम् (विष्णोः) हविर्धानस्य (ध्रुवः) ग्रन्थिः (असि) भवसि [प्राग्वंशं हविर्धानं निधाप्य वैष्णवमसीत्यालभत इति का०] हे हविर्धानत्वम् (वैष्णवम्) विष्णुदेवताकत्वेन तत्सम्बन्धि (असि) भवसि तस्मात् (विष्णवे) विष्णुप्रीत्यर्थम् (त्वा) त्वां स्पृशामीति शेषः। [यजु० ५। २१] ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे तिर्यग्वंशचीर! तुम इस यज्ञियमंडपके रराटी (द्वारके दो खंभोंपर नीचेको मुखवाला अर्द्धवृत्ताकार जो तिरछा वंशचीर होताहै, उसको रराटी कहते हैं, यही इस मंडपका मायारूप है) होतेहो हे रराटीप्रान्तद्वय! तुम दोनों इस यज्ञियमंडपकी ओष्ठसंधिरूप होतीहो हे लस्यूजनि! (बडी सुई वा सूजा) तुमही इस यज्ञियमंडपकी सूची हो, हे रस्सीकी गांठ! तुम इस यज्ञियमंडपकी गांठ हो, इससे दृढ होवो, हे प्राग्वंश! पूर्वपश्चिमको लम्बा करके स्थापित वांस! इस मंडपकी छतका प्रधान अवलंबन बडावांस (आडा) तुम इस यज्ञियमंडपकी छत्तके मध्यवाले प्रधान वांस हो, इस मंडपकी दृढताकी परीक्षा करनेके लिये तुमको स्पर्श करताहूँ इस मंत्रमें वंशादिमें स्थित सर्वज्ञदेवकी प्रार्थना वह उस रूपसे वर्णन की है ॥ ३ ॥

मन्त्रः।

ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ ४ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य विश्वेदेव ऋषिः । भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छं० । अग्न्यादयो देवताः इष्टकोपधाने वि० ॥ ४ ॥

भाष्यम्–इष्टके त्वमग्न्यादिदेवतारूपाऽसि तां त्वामुपदधामीति सर्वत्र शेषः। अग्न्यादीनां देवतात्वं प्रसिद्धम् । अग्निर्देवता वातो देवतेत्येता वै देवताश्छन्दाᳬसि तान्येवैतदुपदधातीति श्रुतेः । सर्वं सुगमम् । [यजु० १४।२०] ॥ ४ ॥

भाषार्थ–अग्निदेवताकी प्रार्थना करताहुआ, यह इष्टकास्थापन करताहूँ १ वायुदेवताका ध्यान करताहुआ यह इष्टका स्थापन करताहूँ २ सूर्यदेवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूँ ३, चन्द्रदेवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूँ ४, वसुदेवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ ५, रुद्र देवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं ६, आदित्य देवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं ७, मरुत् देवताओंका ध्यान करताहुआ यह इष्टका स्थापन करता हूं ८, विश्वेदेवादेवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं ९, बृहस्पतिदेवताका ध्यान करताहुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं १०, इन्द्रदेवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं ११, वरुण देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करताहूं ॥ १२ ॥ ४ ॥

मन्त्रः ।

ॐ सद्योजातम्प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ॥ भवेभवेनातिभवे भवस्व माम्भवोद्भवाय नमः ॥ ५ ॥

भाष्यम्–मेधाविनः पुरुषस्य ज्ञानोत्पादनाय महादेवसम्बन्धिषु पञ्चवक्त्रेषु मध्ये पश्चिमवक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह–(सद्योजाताय) एतन्नामकं यत्पश्चिमवक्त्रं तद्रूपं परमेश्वरं (प्रपद्यामि) प्राप्नोमि तादृशाय (सद्योजाताय) महादेवाय (वै) (नमः) नमो स्तु हे सद्योजात । (भवेभवे) तत्तज्जन्मनिमित्तं (मां) माम् (न भवस्व) न प्रेरयेत्यर्थः । किन्तर्हि (अतिभवे) जन्मातिलंघननिमित्तं (भवस्व) तत्त्वज्ञानाय प्रेरय (भवोद्भवाय) भवात्संसारात् उद्धर्त्रे सद्योजाताय (नमः) नमोऽस्तु ॥ ५ ॥

भाषार्थ–ज्ञानप्राप्तिके निमित्त महादेवसम्बधिपंचमुखोंमें पश्चिममुख प्रतिपादकमंत्रका वर्णन करते हैं। सद्योजातनामक परमेश्वरके रूपको प्राप्त होताहूं सद्योजातके निमित्त प्रणाम है, हे देव ! अनेक जन्मोंमें मुझे मत प्रेरण करो, किन्तु जन्मके दूर करनेके निमित्त तत्त्वज्ञानके निमित्त मुझे प्रेरण करो । संसारके उद्धारकर्ता सद्योतजातको प्रणाम है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ।

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः ॥ ६ ॥ बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ ७ ॥

भाष्यम्–उत्तरवक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह–(वामदेवाय नमः) उत्तरवक्त्ररूपः वामदेवः तस्यैव विग्रहविशेषाः ज्येष्ठादिनामकाः एते महादेवपीठशक्तीनां वामादीनां नवानां पतयः पुरुषाः तेभ्यो नवभ्यो नमस्कारः अस्तु ॥ ६ ॥ ७ ॥

भावार्थ–उत्तरमुखका प्रतिपादक मंत्र कहतेहैं–उत्तरमुखरूप वामदेवको प्रणाम है, उसीके विग्रह ज्येष्ठादिनाम हैं, यह महादेवकी पीठशक्तियोंके स्वामी हैं । वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, कालकल, विकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमथन, सर्वभूतोंके दमन करनेवाले, मनोन्मनके निमित्त नमस्कार है ॥ ६ ॥ ७ ॥

मन्त्रः ।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ॥ सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ८ ॥

भाष्यम्–दक्षिणवक्त्रप्रतिपादकमन्त्रमाह–(अघोरेभ्यः) अघोरनामको दक्षिणवक्त्ररूपो देवः तस्य विग्रहाः अघोराः सात्त्विकत्वेन शान्ताः अन्ये तु (घोराः) राजसत्त्वेन उग्राः अपरे तु तामसत्वेन (घोरतराः) घोरादपि घोरतराः (शर्व) हे शर्व परमेश्वर (ते) त्वदीयेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यः त्रिविधेभ्यः (सर्वेभ्यः) (रुद्ररूपेभ्यः) सर्वतः सर्वेषु देशेषु सर्वेषु च कालेषु (नमः) नमः (अस्तु) भवतु ॥ ८ ॥

भाषार्थ–दक्षिणवक्त्रप्रतिपादक मंत्र कहतेहैं–सत्त्वगुणयुक्त होनेसे अघोर, राजस होनेसे घोर और तामससम्बन्धसे घोरतर शर्व प्रलयमें जगत्के हरनेवाले हम आपके तीन प्रकारके रूपोंको सब देशकालमें प्रणाम करतेहैं आपके रुद्र शर्व सर्व रूपोंको नमस्कार है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ।

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ॥ तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥

भाष्यम्-प्राग्वक्त्रदेवः तत्पुरुषनामकः द्वितीयार्थे चतुर्थी । (तत्पुरुषाय) तत्पुरुषं देवं (विद्महे) गुरुशास्त्रमुखाज्जानीमः ज्ञात्वा च (महादेवाय) तं महादेवं (धीमहि) ध्यायेम (तत्) तस्मात्कारणात् (रुद्रः) देवः (नः) अस्मान् (प्रचोदयात्) ज्ञानध्यानार्थं प्रेरयतु ॥ ९ ॥

भाषार्थ-पूर्वमुखप्रतिपादक मंत्र कहतेहैं, तत्पुरुषदेवको गुरु शास्त्र मुखसे जानतेहैं, जानकर उन महादेवको ध्यान करतेहैं, इस कारण वह रुद्र हमको ज्ञान ध्यानके लिये प्रेरणा करे९॥

मन्त्रः ।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्॥ ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्माशिवोमेअस्तुसदाशिवोम्॥ १० ॥

भाष्यम्-ईशानः योऽयमूर्ध्ववक्त्रो देवः सोयम् (सर्वविद्यानाम्) वेदशास्त्रादीनां चतुःषष्टिकलाविद्यानाम् (ईशानः) नियामकः तथा (सर्वभूतानाम्) अखिलप्राणिनाम् (ईश्वरः) नियामकः (ब्रह्माधिपतिः) वेदस्याधिकत्वेन पालकः तथा (ब्रह्मणः) हिरण्यगर्भस्य (अधिपतिः) अधिपतिः तादृशः (ब्रह्मा) ब्रह्मा अस्ति प्रवृद्धः परमात्मा सोऽयम् (मे) ममानुग्रहाय (शिवः) शान्तः (अस्तु) अस्तु (सदाशिवोम्) स एव सदाशिवः ॐ अहं भवामि ॥ १० ॥

भाषार्थ-ऊर्ध्वमुखदेवका प्रतिपादक मंत्र वेदशास्त्रादि विद्या और चौंसठ कलाओंके नियामक समस्तप्राणियोंके नियामक वेदके विशेषरूपसे पालक हिरण्यगर्भके अधिपति ब्रह्मारूप सो परमात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये शान्तरूप हों मैं सदाशिवरूप हूं यह ६ मन्त्र तैत्तरीयारण्यकके हैं ॥ १० ॥

मन्त्रः ।

ॐ शिवोनामासिस्वधितिस्तेपितानमस्तेअस्तुमामाहिᳬसीः ॥ निर्वर्त्तयाम्यायु-

ऐन्द्राग्नाय प्रजापत्याय रायस्पोषाय सुप्र-
जास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ११ ॥

शिवोनामासीति व्याख्यातं रुद्राष्टके ६।८ मंत्रव्याख्यायाम् ॥ ११ ॥

भाषार्थ–शिवोनामासि इसकी व्याख्या रुद्रीके ६ । ८ मंत्रमें होगई ॥ ११ ॥

मन्त्रः ।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ॥
यद्भद्रन्तन्न ऽआसुव ॥ १२ ॥

ॐ विश्वानिदेवेत्यस्य नारायण ऋषिः । गायत्री छन्दः । सविता देवता । प्रार्थने वि० ॥ १२ ॥

भाष्यम्–(देवसवितः) हे देवसवितः (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) पापानि (परासुव) दूरे गमय (यत्) यत् (भद्रम्) कल्याणम् (तत्) तत् (नः) अस्मान्प्रति (आसुव) आगमय ॥ १२ ॥

भाषार्थः–हे सवितादेव ! हमारे सब पापोंको दूर करो और जो कल्याण है सो हमको प्राप्त करो ॥ १२ ॥

मन्त्रः ।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ॥ वन-
स्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शा-
न्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा
शान्तिरेधि ॥ १३ ॥

ॐ द्यौः शान्तिरिति व्याख्यातम् रुद्राष्टके शान्त्यध्याये ॥ १३ ॥

भाषार्थ–द्यौः शान्ति–इसकी व्याख्या शान्त्यध्यायके १७ मंत्रमें होगई ॥ १३ ॥

मन्त्रः ।

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु ॥ अनेन रुद्राभिषेककर्मणा कृतेन श्रीभगवान्भवानीशङ्करमहारुद्रः प्रीयतां न मम ॥ ॐ सदाशिवार्पणमस्तु ॥

इति स्वस्तिप्रार्थनामंत्राऽध्यायः ॥

भाषार्थ-शान्तिः ३ प्रकारसे शान्ति हो सम्पूर्ण अरिष्टोंकी शान्ति हो इस रुद्राभिषेककर्मसे श्रीभगवान् भवानीशङ्कर महारुद्र प्रसन्न हों, मेरा इसमें कुछ नहीं सब शंकरका है, यह शिवजीके अर्पण हो ।

स्वस्तिप्रार्थनामें मन्त्राध्याय पूर्ण हुआ ।

इति श्रीरुद्राष्टके मुरादाबादनिवासि पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्वितः मंत्राध्यायः ॥

दोहा ।

गौरीशंकर पदकमल, प्रेमसहित हिय लाय ।
संस्कृत भाषातिलकसह, कीनो रुद्राध्याय ॥ १ ॥
पढै सुनै कर प्रेम जो, लहैं पदारथ चार ।
भक्ति होय श्रीशंभुकी, जो जगमें सुखसार ॥ २ ॥
संवत् ऋतु ऋतु अंक विधु, मास असाढ पुनीत ।
शुक्लपक्ष तिथि चौथ शुभ, चन्द्रवार शिवप्रीत ॥ ३ ॥
पूर्ण कियो शुभ ग्रंथ यह, सज्जनकहँ सुखदान ।
पढहिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान ॥ ४ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.